जूनियर फैलोशिप के अंतर्गत
चतुर्थ छै माह एवं
पूर्ण शोध कार्य

बुन्देली लोकनृत्य

01 जनवरी, 2016 से
31 जनवरी, 2018
वर्ष 2013–14

शोधार्थी
विनीता दोहरे
File No. CCRT-3/35/2015
संत रविदास मंदिर के गेट के पास
ग्राम करीपुर, सागर (म.प्र.) 470 330

सांस्कृतिक स्त्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र, नई दिल्ली

cqUnsy[k.M dk ifjp;

(अ) बुन्देलखण्ड की भौगोलिक पृष्ठभूमि

(ब) बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(स) बुन्देलखण्ड का नामकरण

(द) भाषाई पृष्ठभूमि

¼v½ cqUnsy[k.M dh HkkSxksfyd i`"BHkwfe %&

इतिहास वेत्ताओं के बुन्देलखण्ड को भारतवर्ष का हृदय कहा है तो भूगोल शास्त्रियों ने विन्ध्याचल को हिमालय से भी पुरातन बताया है। विन्ध्यांचल की तलही में एक विशाल बीहड़ वन है, जो विन्ध्य श्रेणियों से घिरा है, जहां उच्च तुंग श्रृंगों से सहसत्रों झरने और प्रपात प्रवाहित होते रहते हैं। इस स्थान को विन्ध्यक्षेत्र कहते हैं।

यह प्रदेश नर्मदा सोन खड्ड के उत्तर में गंगा घाटी की ओर मुंह किये स्थित है। यह वास्तव में भारत के प्रसिद्ध पठार का उत्तरी मध्यवर्ती भाग है। इस प्रदेश में मध्यप्रदेश के दतिया, टीकमगढ, छतरपुर, पन्ना, भिण्ड की लहार तहसील एवं ग्वालियर की भाण्डेर तहसील और उत्तर प्रदेश के ललितपुर, झांसी, हमीरपुर, जालौन, बांदा जिले सम्मिलित हैं।

सामान्य तौर पर विन्ध्य परिक्षेत्र ही बुन्देलखण्ड है परन्तु इसका सीमांकन समय–समय पर प्रशासनिक आधारों पर भी गढ़ा गया। ओरछेश महाराजा वीरसिंह देव प्रथम के समय बुन्देलखण्ड में वर्तमान बुन्देलखण्ड तथा कुछ भू–भाग पश्चिमी बधेलखण्ड का भी शामिल था। जबकि डंगई क्षेत्र (पन्ना) के राजा छत्रसाल के समय ''इत यमुना, उत नर्मदा, इत चंबल, उत टौंस, बुन्देलखण्ड की सीमा मानी जानी लगी थी। भौगोलिक रूप से विन्ध्य परिक्षेत्र विंध्येला (विंध्यइला) कहलाता था जो एक प्रथक इकाई के कारण विन्ध्येला अपभ्रंश में बुन्देला और विन्ध्येलखण्ड – बुन्देलखण्ड हो गया।

पारंपरिक और ऐतिहासिक तौर पर बुन्देलखण्ड मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश के बीच विस्तारित एक बडे भू भाग को माना जाता है, पर वर्तमान में बुन्देलखण्ड को

दोनों राज्यों के ग्यारह जिलों की भौगोलिक सीमाओं में वस्थित माना जा रहा हैं। इसमें मध्यप्रदेश का समूचा सागर संभाग जिसमें सागर, दमोह, पन्ना, छतरपुर और टीकमगढ जिले आते है। जब कि उत्तरप्रदेश के झॅासी, हमीरपुर, महोबा, बांदा, ललितपुर और जालौन जिले इस राज्य में शामिल है। इस तरह यह क्षेत्र मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में बटा हैं।

ऐतिहासिक आधार पर इस क्षेत्र की सीमाएं बनाई जाए तो इस राज्य के महापुरूष महाराज छत्रसाल को लेकर उस कथन को महत्वपूर्ण माना जा सकता है जिसमें कहा गया है कि –

''इत जमना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस।
छत्रसाल सो लरन की, रही न काहू होंस।।

इस दोहे के अनुसार बुन्देलखण्ड की उत्तर की सीमा जमुना नदी है। दक्षिण सीमा नर्मदा नदी है, पूरब की सीमा टोंस नदी है और पश्चिम की सीमा चम्बल नदी है। ये इसकी ऐतिहासिक सीमाएं हैं। कुल मिलाकर महाराज छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड में अपने इस राज्य को चारों प्रमुख नदियों के मध्य माना है अर्थात चारों नदियों को छूने वाला राज्य ही बुन्देलखण्ड है।

बुन्देलखण्ड पर महत्वपूर्ण कार्य करने वाले अंग्रेज अफसर जार्ज ए ग्रियर्सन ने लिखा है कि बुन्देली भाषा का क्षेत्र बुन्देलखण्ड के राजनीतिक क्षेत्र से मिलता जुलता नहीं है। क्योंकि किसी देश की सीमा का निर्धारण प्रशासनिक आधार पर नहीं, बल्कि भाषा, बोली, सामाजिक, सांस्कृतिक, आचार विचार, संस्कार भोजन और लोक संस्कृति के आधार पर किया जाना चाहिए। इस प्रदेश की भाषा बुन्देली है जो यमुना, नर्मदा के मध्य की सिन्ध पहूज, बेतवा, जामुनी, धसान, सोनार और केन के कछारी भू–भाग के ग्रामीण अंचलों में बोली जाती हैं जिसके केन्द्रीय स्थल, झॅासी, टीकमगढ और सागर है। यहां बुन्देली का परिनिष्ठित स्वरूप उपलब्ध होता है।

इस प्रकार सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषा बोली के ठोस आधारों पर निर्मित मौलिक इकाई 23.00 से 26.00 उत्तरी अक्षांश एवं 77.5 से 79.5 पूर्वी देशांतर के मध्य कुछ लंबाकार भू भाग ही सही बुन्देलखण्ड है।

ik—frd ifjfLFkfr;k¡ %&

Hkkfrd :i – भारतीय पठार का अंग होने के कारण इसकी संरचना संबंधी विशेषताऍ वहीं हैं जो राजस्थान उच्च भूमि की है और यहां पूर्व कैम्ब्रियन महाकल्प में बनी प्राचीन नाइस एवं ग्रेनाइट शैलें पाई जाती हैं जिनके अवशेष प्रायः ऊंचे कठोर टीलों के रूप में मिलते है। यह पठारी प्रदेश बहुत नहीं है। सागर तल से इसकी औसत ऊँचाई 300 से 600 मीटर तक है।

यहां की भूमि पठारी, पथरीली और ककरीली है जिसे रॉकड़ कहा जाता है। उत्तरी एवं दक्षिणी बुन्देलखण्ड की कुछ भूमि काली किस्म की मोटी है जबकि मध्यभाग की भूमि ऊँची नीची है। उत्तरी दक्षिणी पट्टियों की भूमि समतल एवं उपजाऊ है। मध्य बुन्देलखण्ड की टौरियाऊ भूमि में यत्र–तत्र मोटी, पतरूआ, कॉकर, काबर, मार, पडुआ, छापर और छिनकी जैसी विभिन्न प्रकार की भूमि प्राप्त है। जो जल के बहाव और ठहराव कर्म के आधार पर निर्मित होती रहती है। यहॉ की नीची और समतल भूमि कृषि कर्म एवं ऊँचीं भूमि आवास के उपयोग में लाई जाती है। दो पहाडियों के मध्य नीची भूमि में पत्थरों से सरलतापूर्वक तालाब और बंधियॉ बना लेना यहॉ की विशेषता है। पहाडियॉ सुरक्षित और सुरम्य दुर्गो के निर्माण में भी उपयोगी रही हैं। इसी कारण बुन्देलखण्ड में दुर्गो, गढियों एवं सरोवरों की अधिकता पाई जाती है।

दक्षिणी पठारी भाग विच्छिन्न है। मध्य का ग्रेनाइट पठार 300 मीटर ऊँचा है। नदी घाटियों में चौरस मैदान है। उत्तर की ओर एक तिहाई भाग चौरस है। इस पठारी भाग में कुछ नीची पहाडी श्रेणियॉ स्थित हैं। इसमें तीन विशेष प्रसिद्ध है – उत्तरी पूरवी सिरे पर कैमूर की पहाडियॉ, रीवा से मिर्जापुर जिले तक फैली है जो काफी नीची हैं। दूसरी श्रेणी इस प्रदेश के मध्यभाग में दक्षिण–पश्चिम से उत्तर पूरब की ओर फैली है और मानरेर श्रेणी के नाम से संबोधित होती है। तीसरी श्रेणी विन्ध्यांचल पर्वत की है जो प्रदेश के दक्षिणी पश्चिमी भाग में स्थित है।

इस पठार का दक्षिणी सिरा एकदम ऊंचा उठा हुआ है अतः इसका जल अपवाद उत्तर की ओर है और गंगा के मैदान के पास पहुंचकर पठारी भूमि एकदम समाप्त हो जाती है। अतः गंगा नदी की ओर बहने वाली नदियॅा इस पठार से उतरते समय अनेक जल प्रताप बनाती है। इस प्रदेश से उतरते समय अनेक जलप्रपात बनाती

है। इस प्रदेश की मुख्य नदियॅा बेतवा, केन व धसान है। जो उत्तर की ओर बहकर गंगा एवं यमुना नदियों में मिल जाती है। बेतवा इस प्रदेश की पश्चिमी सीमा पर बहती है। टोंस नदी इस पठार को बुन्देलखण्ड एवं बधेलखण्ड दो भागों में विभक्त करती है। मैदान की ओर मिट्टी बढिया एवं उपजाऊ है। पठारी भाग में हल्की बालू युक्त कम उपजाऊ मिट्टी मिलती है।

t yok;q :– इस प्रदेश की जलवायु आर्द्र है, फिर भी समुद्र से होने के कारण यहॅा की जलवायु महाद्विपीय है। कर्क रेखा इस प्रदेश के मध्य से लकर गुजरती है, अतः गर्मियों में तापमान काफी ऊँचा हो जाता है जो 30 से.ग्रे. औसत रूप से रहता है। सर्दियों में काफी ठण्ड पडती है और तापमान का औसत 18 से.ग्रे. तक गिर जाता है। वार्षिक ताप– परिसर 16 स.ग्रे. तक पाया जाता है।

गर्मियों में मानसून हवाएॅ इस प्रदेश पर अपना स्पष्ट प्रभाव डालती है बंगाल की खाडी से आने वाली मानसून इस प्रदेश के पूर्वी भाग में वर्षा करती है और सोन नदी के घाटी के निकट 125 से.मी. तक वर्षा होती है। पश्चिम की ओर वर्षा कम होती जाती है। बुन्देलखण्ड में 75 से.मी. तक वर्षा होती है।

lfjrk,¡ :– यहॅा की प्रमुख नदियों में बेतवा, धसान, चम्बल, सिन्ध, पुष्पावती, केन, जामनेर, नर्मदा, आदि नदियॅा वन प्रदेश की रक्षा करती आ रही है।

इनके अतिरिक्त जमुना, पहूज, बीला, बाधिन, सोनार, बेरमा, हिरन, जामुनी, जमडार, सजनाम, उर्मिल नदियॅा सभी उत्तर की ओर बहती है। केवल नर्मदा कछार का ढ़ाल उत्तर से दक्षिण को है। यहॅा की नदियां पठारी होने के कारण तेजप्रवाही हैं। अधिकांशतः राज्यों, जिलों एवं गांवों की सीमाएं नदियों और नालों से प्राकृतिक बनी हुई है।

—f"k :– बुन्देलखण्ड की 83000 वर्ग मील क्षेत्र की जमीन खेती के लिए उपयोगी मिट्टी वाली है पर वर्तमान में इसका केवल 1/3 भाग खेती में है। 1/3 भाग में जंगल है और शेष हिस्सों में खेती करने से हमारी खेती आसानी से वर्तमान से दूनी हो सकती है संपूर्ण बुन्देलखण्ड में औसतन वर्षा अच्छी होती है। जमीन सिंचाई युक्त होने पर एक फसल की बजाय तीन फसल हो जाती है।

वर्षा ॠतु में बोई जाने वाली फसल स्यारी या कतकी कहीं जाती है, जिसमें ज्वार, धान, उर्द, मूंग, कोदो, समॉ, लठारा, कुटकी, और तिली बोई जाती है। ये मोटे अनाज कहे जाते है तथा सैंकड़ों वर्षो तक बिना धुने सुरक्षित रखे रहते है। दूसरी फसल उन्हारी या वैत की कही जाती है, यह कार्तिक, अगहन, में बोई एवं चैत में काटी जाती है। इसमें गेहूँ, चना, जौ, मसूर, तेवडा, अलसी, सरसों और सेउऑ पैदा किया जाता है। इस फसल को जाड़ा एवं पानी अधिक चाहिए। तीसरी फसल गर्मी में बोई जाती है। मूँग, उर्द, कलोंदा, कुम्हडा, चीमरी, और जिठऊ साठिया धान पैदा की जाती है। यह फसल विशेषकर तालाबों और नदियों में की जाती है। कपास की खेती जालौन, बॅादा, हमीरपुर, क्षेत्रों में की जाती थी।

[kfut lEink :– बुन्देल भूमि खनिजों से भरपूर है। यहॅा लोहा, अभ्रक, सीसा, चॅादी, हीरा और चूना, जैसी बहुमूल्य सम्पदा प्राप्त है। हीरा छतरपुर, पन्ना और अजयगढ़ क्षेत्रों में, लोहा एवं सीसा टीकमगढ़, नरबर, छतरपुर, झॅासी, बिजावर में चूना, कटनी, दमोह, सागर, पन्ना, जबलपुर, दतिया में चॅादी टीकमगढ के तमोरा, सूरजपुर, हटा, नारायणपुर में, अभ्रक टीकमगढ, सागर गौरा, पत्थर पन्ना, टीकमगढ में, निसाव (चीप) पत्थर ललितपुर, सागर, पन्ना, नमक, चिरगांव के पास उपारी में प्राप्त होता है। वर्षा ॠतु में पहाडियों एवं टौरियों की तलहटी के नीचे क्षेत्रों में पानी के ऊपर चिकना द्रव पदार्थ दिखता है जो पेट्रोलियम जैसे चिकने तेल पदार्थो के होने के स्पष्ट संकेत है।

vkokxeu vkSj ;krk;kr :– बुन्देलखण्ड पहाड़ी और जंगली भू–भाग होने से आवागमन के साधनों में पिछडा रहा है। टेढ़े–मेढ़े गहरे नाले, नदियों, नीचे ऊॅचे घाट और दर्रे यातायात में बाधक रहे है। नदियों पर पुल न होने से आवागमन एवं यातायात के साधन बैलगाडी, घोडा, गधे, भैंस, भैंसा और लद्‌दू बैल (भर्रे) ही थे। बोझा ढोने वाले ''बुझिया'' भी सामान ले जाने का काम करते थे। अंग्रेजी शासन के प्रभाव से सड़क मार्गो में कुछ सुधार हुआ था।

परिवहन के साधनों का इस प्रदेश में विकास नहीं हुआ है। बम्बई झॅासी रेलमार्ग इस प्रदेश के मध्य से गुजरता है। इसके अतिरिक्त मानिकपुर झॉसी कटनी बीना रेलमार्ग मुख्य है। 5 हजार कि.मी. लम्बी सड़कें है जिसमें 60 प्रतिशत का प्रयोग साल भर होता है।

cUny[k.M d ou&miou :– बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग, विशेषकर मध्य की पठारी भूमि वनाच्छादित है। यहॉ के जंगल वन संपदा से भरपूर है। इमारती एवं जलाऊ लकड़ी के अतिरिक्त औद्योगिक लकड़ी भी यहॉ उपलब्ध है। सागौन, सेजा, कुरौ, धवा, करधई आदि के अतिरिक्त बांस, सलैया, गुंजा, छेवला, कर्रा, हर्रा, बहेड़ा ऑवला भी बहुतायत में प्राप्त है। खैर के जंगल भी खूब हैं। आम, जामुन, खिरनी, अचार, तेंदू, बेर, महुआ, मकोर जैसे फलदार वृक्ष यहॉ के वनों में भारी संख्या में हैं। औषधियों वाली जडी–बूटी और घास भी प्राप्त होती है। वन वृक्ष बुन्देलखण्डवासियों के जीवन साथी है। फलों को खाकर कितने अधिक लोग जीवन गुजार देते है कि गणना भी कठिन है। अकाल के समय तो यहॅा के लोग वनोपज से अपने प्राणों की रखा करते है। इसलिए यहॉ कहावत है कि –

''मेघ करौंटा लैगओ, इंद्र बॅाध गओ टेक।
बैर मकौरा यौ कहै, मरन न पावे एक।''

वनफल खाकर भी लोग अपना अकाल का समय काट लेते हैं और प्रसन्न रहते हैं।

इस प्रदेश में बिखों (छोटे पौधों) में तुलसी, बोबई, सरफौंका, दौना–मरूआ, करौदी, सहदेवी, बला, महाबला, किरकिचयाऊ, बांसा आदि और लतिकाओं में कृ ष्णकान्ता, राधा कान्ता, गुरबेल, नागबेल ओंधपुष्पी आदि तथा जड़ी–बूटियों में गुरमार, लक्ष्मणा, भटा, कटारी, मदन मस्त, रतनजोत, अमरबेल, भूषाकर्णो, भौफली, शंखपुष्पी आदि की बहुतायत है और ये प्रसिद्ध भी है।

यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति मानसूनी पतझड प्रकार की है। जिसमें सागौन, साल, बाँस, महुआ, ढाक, शीशम तथा बबूल वृक्ष मुख्य है। कम वर्षा एवं अनुपजाऊ मिट्टी वाले ऊबड़–खाबड भाग पर छोटी कॅाटेदार झाडियाँ उगती है। निचले पठारों एवं कम वर्षा वाले भागों में घास के मैदान मिलते है। वनों में कुछ विशिष्ट घासें कॉस एवं कालिंजर उगती है। जिनका उपयोग कागज उद्योग में किया जाता है। सोन की घाटी में साल के जंगल है तथा विन्ध्यांचल की पहाड़ियाँ जंगलों से ढकी है। भारत में सबसे बढ़िया सागौन यहां मिलता है। यहॅा के वनों से इमारती लकड़ी, गोंद, लाख, तथा ईधन की लकड़ी विशेष रूप से प्राप्त होती है। इस प्रदेश की 7.2 प्रतिशत भूमि वनाच्छादित है।

¼c½ cUny[k.M dk ipu Hkkxkfyd ifjo'k %&

यह एक प्रमाणिक तथ्य है कि भौगोलिक परिप्रेक्ष्य के अभाव में इतिहास स्वयं में महत्वहीन है। किसी भी देश या क्षेत्र की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि काफी हद तक उसके भौगोलिक परिवेश से नियंत्रित एवं निर्मित होती है। इसीलिए अनिवार्यतः यह एक प्रमाणिक तथ्य है कि किसी भी क्षेत्र विशेष का इतिहास उसके भौगोलिक कारणों पर निर्भर होता है क्योंकि वे ही कारक उसे पुष्ठ स्वरूप प्रदान करते है। बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक समृद्धि, कला वैभव, प्रागैतिहासिक, औद्योतिहासिक एवं ऐतिहासिक पुरावशेष राजनीतिक शौर्यगाथा तथा समाजार्थिक एवं धार्मिक परम्पराएँ मूलतः उसके विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के प्रतिफल है। क्योंकि यह भू–भाग उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के मध्य अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति, चतुर्थिक पार्वव्य प्रदेश प्राकृतिक संसाधनों आदि के कारण विभिन्न कालों में शासकों एवं ऋषियों को अपने विशिष्ट अधिवास के लिए आमंत्रित एवं आकर्षित करता रहा है। इतना ही नहीं बल्कि उत्तर एवं दक्षिण के मध्य प्रवेश द्वार के रूप में सिद्ध होकर इस भूखण्ड ने शासकों, व्यापारियों, सार्थवाहों एवं धार्मिक प्रेणाताओं को उनके प्रथम प्रयास में ही सम्मलता अर्जित कराई। इसकी अद्भुत एवं आकस्मिक प्राकृतिक घटनाओं ने यहॅा के निवासियों को अत्यंत सुद्रढ एवं स्वावलम्बी होने के साथ साथ ईश्वरीय सत्ता के प्रति नत बनाया। यह पार्वव्य प्रदेश अपनी आकर्षक उच्चावच, भू–संरचना न्यूनाधिक निम्न मृदा, कठोर जलवायु आदि के कारण अपनी पृथक पहचान बनाए हुये है।

¼l½ cUny[k.M dh ,frgkfld i"BHkfe :–

भारत वर्ष के मध्य भाग में अवस्थित नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण विन्ध्यांचल की पर्वतमालाओं से समाविष्ट और यमुना की सहायक नदियों के जल से प्लावित, प्राकृतिक सौंदर्य से समन्वित जो भू–भाग है, उसे हम बुन्देलखण्ड कहते हैं।

बुन्देलखण्ड की भूमि अत्यंत समृद्धशाली है, इसका इतिहास भी गरिमामय और शौर्य से परिपूर्ण है। भारत के स्वतंत्र होने के पूर्व यह अनेकानेक छोटे बड़े राज्यों तथा जागीरों में विभक्त था। पराधीनता के उस युग में यहॅा राजनीतिक उथल पुथल होती

रहीं, साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में विकास कार्य भी संचालित होते रहे। राजतंत्र अपने ढंग पर अपने–अपने राज्यों का संचालन करता रहा –

ofnd ;qx – ऋगवैदिक काल में ऋग्वेद के अनुसार आर्यो का निवास सप्त सिन्धु तक रहा। अतः बुन्देलखण्ड उनके प्रभाव से बाहर रहा। स्पष्टतः यहॉ पुलिन्दों, निषादों, शबरों, दॉगियों आदि आर्योत्तर जातियों का निवास था। पुलिन्दों का म्लेच्छ कहा गया है क्यों वे आर्यो की यज्ञमूलक संस्कृति को नहीं मानते थे। निषादों और शबरों ने बाद में आर्य संस्कृति स्वीकार की थी। उत्तर वैदिक युग में आर्यो ने हिमालय और विन्ध्यांचल के बीलच का क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया था। निश्चित है कि एक सांस्कृतिक संघर्ष वर्षो तक चला जिसका अनुमान बाल्मीकि रामायण के राम के अभियान से लगाया जा सकता है। एक तरफ दक्षिण की रक्ष–संस्कृति थी दूसरी ओर आर्य संस्कृति और तीसरी तत्कालीन क्षेत्रीय संस्कृति। क्षेत्रीय निषादों, शबरों, कोल, भील आदि ने तो राम का साथ दिया था, क्योंकि राक्षस उन्हें सताते थे लेकिन आर्य और वन्य संस्कृति के समन्वय में अधिक समय लगा था। सूत्र युग में आर्यो ने कठोर नियम, उपनियम बनाकर लोक जीवन में परिष्कार करने का प्रयत्न किया था पर उससे जटिलता और कर्मकाण्डी विधि–विधान की कट्टरता भी आई थी जो लोक सहज न थी। बुन्देलखण्ड में उसका प्रभाव बहुत बाद में पड़ा। इसी कारण यहॅा की वन्य संस्कृ ति महाभारत काल तक बनी रही।

jkek;.kdky –

इतिहासकारों का मत है कि आर्यो ने विन्ध्य क्षेत्र पर सेना के द्वारा अधिकार नहीं किया वरन ब्राह्मण और क्षत्रियों के छोटे दलों ने प्रवेश कर जंगलों को साफ कर अपनी कुटी तथा निवास बनाकर बस्तियॉ बसायी परन्तु वास्तविकता यह है कि अगस्त, अजि आदि ऋषियों ने विन्ध्य की प्रकृति की गोद में आश्रमों की स्थापना की थी जिससे इस जनपद में आश्रमी संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ था।

वैदिककाल में बुन्देलखण्ड आदिम जन जातियों का स्थल था लेकिन रामायण काल में ब्राह्मण अगस्त मुनि बनो से आच्छादित इस भूखण्ड में आये थे, जिन्होंने

कालिंजर स्थल को अपनी तपोभूमि बनाई थी, तदनन्तर बुन्देलखण्ड भूमि तपस्या और ईश्वर आराधना के स्थल के रूप में विख्यात हो गयी। बाल्मीकि रामायण में नर्मदा नदी का नाम नहीं आया है। इससे स्पष्ट है कि उस काल तक आर्यो की बस्तियां नर्मदा तक नहीं पहुंची थी परन्तु अत्रि, सुतीक्षण और शरभंग ऋषियों के आश्रम यमुना के किनारे दक्षिण ही में थे। जिनमें श्रीराम चंद्र जी बनवास की अवधि में गये थे। अत्रि का आश्रम तो चित्रकूट (बुन्देलखण्ड) में प्रसिद्ध ही है।

कालान्तर में बुन्देलखण्ड का यह भू–भाग रामचन्द्र के भाई शत्रुधन के पुत्र शत्रु घाती के अधिपत्य में हो गया था। जिसकी राजधानी केन नदी के किनारे कुशावती बनायी गयी थी।

egkHkkjr dky %–

महाभारत काल में बुन्देलखण्ड के पूर्वी भाग में बेदि राज्य था। आधुनिक दमोह जिला और उसके उत्तर में रजबाडों का प्रांत (दर्शाण नदी के पश्चिम का भाग) चेदि देश में ही था। जो पश्चिम में बेतना और उत्तर में यमुना नदी तक था। वेदि देश में महाभारत के समय शिशुपाल का राज्य था। इसकी राजधानी चॅदेरी थी, यह स्थान आज भी प्रसिद्ध है। दशपर्ण देश में सागर जिला और बुन्देलखण्ड का कुछ भाग था और इसकी राजधानी विदिशा थी। इसमें हिरण्य वमी राजा राज्य करता था। जिसकी पुत्री पांचाल नरेश द्रुपद के पुत्र शिखंडी को व्याही गयी थी। लेकिन यह पुरूषत्व हीन था इस कारण हिरण्य वर्मा और राजा द्रुपद में युद्ध भी हुआ था लेकिन तत्पश्चात दोनों में सन्धि हो गई थी। इसके बाद दर्शाण देश में सुधमी का नाम प्राप्त होता है। जिसका युद्ध पांडवों के सेनापति भीमसेन से हुआ था, जिसमें भीमसेन को विजय प्राप्त हुई थी।

महाभारत काल में बुन्देलखण्ड के उत्तरी पूर्वी भाग में कारूष राज्य था, जिसकी राजधानी कारूषपुरी (कर्वी) थी। अवध के राजा करम ने कलिंजर दुर्ग का निर्माण कराकर चेदि देश की राजधानी चंदेरी पर अपना अधिकार कर बूढी चंदेरी से कुछ दूर नयी चंदेरी की स्थापना की थी।

ek;l dky – (322 ई.पू. से 184 ई.पू.) :–

मौर्यकाल (322 ई.पू. से 184 ई.पू.) के पूर्व ब्राह्मण धर्म के विरोध में दो नए संप्रदाय जैनधर्म एवं बौद्धधर्म उद्भूत हुए थे, जिससे राष्ट्रीय एकता विखंडित हुई और 16 महाजनपदों में राष्ट्र विभक्त हो गया था। उनमें से एक कन्नौज के पांचालों का था, जो बुन्देलभूमि में सिंध नदी से केन नदी तक था। मौर्य सम्राट अशोक की ससुराल इसी भूमि (विदिशा) में थी। अशोक के प्रभाव के कारण बुन्देलखण्ड में भी बौद्धधर्म का प्रचार हुआ था, जिसके उदाहरण गुजर्रा ग्राम (दतिया) एवं रूपनाथ (जबलपुर) के बौद्ध शिलालेख हैं।

मगध राज्य के शासक चंद्रगुप्त ने अपने राज्य के आसपास के कई जनपदों को अपने अधिकार में कर लिया जिससे अन्य जनपदों के राजाओं को भी चंद्रगुप्त के राज्य में मिल जाना पड़ा। चंद्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य में नर्मदा के उत्तर का संपूर्ण भाग आ गया था। इस कारण बुन्देलखण्ड का परिक्षेत्र भी चंद्रगुप्त के साम्राज्य में था।

अशोक बौद्ध धर्म ग्रहण करने के बाद उसने सांची और भरहुत में स्तूप बनवाए तथा जबलपुर के रूप नाथ एवं दतिया के गुर्जरा ग्राम में बौद्ध शिलालेख उत्तीर्ण करवाए। किन्तु मौर्य साम्राज्य के पतन पर त्रिपुरी, एरण, विदिशा चेदि जनपद फिर स्वतंत्र हो गये।

xqIr dky ¼290bZ-&400bZ-½ :–

बुन्देलखण्ड का दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र तो गुप्त राजाओं के प्रत्यक्ष शासन में था जिसका मुख्यालय एरण में स्थित था और उस शेष बुन्देलखण्ड उनके रिश्तेदारों नागों और वाकाटकों के अधीन था।

समुद्रगुप्त ने पद्मावती के राजा गणपति नाग को अपने अधिकार में करके अपना माण्डलिक नियुक्त कर दिया था। झांसी और ग्वालियर के मध्य आभीर लोग निवास करते थे इन्हें भी समुद्र गुप्त ने अपने अधिकार में कर लिया था इस भाग को अहीरबाड़ा कहते है।

स्कन्द गुप्त की मृत्यु के 4 वर्ष पश्चात् जब तोरमाण एरन आया उस समय एरन प्रांत स्कंद गुप्त के भाई बंध बुध गुप्त के अधीन था लेकिन बुध गुप्त की ओर से यहॉ सुरश्मि चन्द्र नामक माण्डलिक यमुना और नर्मदा के मध्य प्राप्त का प्रशासक था और सुरश्मि चंद्र की ओर ऐरन का राज्य संचालन करने के लिए ब्राहम्ण मातृ विष्णु और धान्य विष्णु नियत थे। इन्हीं के समय तोरमाण ने संवत् 542 विं. में अपना आधिपत्य बुन्देलखण्ड पर जमाया। एरन के बाराह बक्षस्थल में इसका उल्लेख हुआ है। ऐरन में मातृ में मातृ विष्णु द्वारा बनवाए स्तम्भ से ज्ञात होता है कि मातृविष्णु गुप्त लोगों के अधीन था। परन्तु उसका भाई धान्य विष्णु तोरमाण का आधिपत्य स्वीकार करके उसके अधीन हो गया था।

dypjh jkT; ¼550b-&1200b-½ :–

कलचुरी राजवंश हैह्य क्षत्रिय, चेदि कलार, राय, शिवहरे, टंडन इत्यादि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। रामायण काल में सहस्त्रार्जुन, महाभारजत काल में हैदय, शिशुपाल, शंकर का वरदान प्राप्त त्रिपुरी इत्यादि इसी वंश के थे। बुन्देलखण्ड में इनके दो केन्द्र थे पूर्वी बुन्देलखण्ड में त्रिपुरी और दक्षिणी पश्चिमी बुन्देलखण्ड में चॅदेरी। कलचुरियों की राजधानी महिस्मती (महेश्वर) रही। यह मालवा के भोज परमार और बुन्देलखण्ड के चंदेल राजवंशों के समकालीन रहे है।

कलचुरी वंश के प्रथम शासक बामराज देव को विद्वानों ने सातवीं शताब्दी के अंत में माना है। बामदेव ने डाहल की सीमा पर स्थित कालिंजर पर अधिकार कर लिया था। कालांतर में इस वश के लक्ष्मण देव के उपरान्त युवराज कोकल्लदेव द्वितीय गंगाय देव (1019–41), कणदेव (1941–101,25)यश कर्ण, जय कर्ण, नरसिंह देव, जयसिंह देव, एवं विजय सिंह कलचुरि सिंहासन रूढ हुए थे।

pnsy jkT; :–

चंदेल यदुवंशी थे। इसके कुलदेव चंद्र बताये जाते हैं। यदुवंश की अनेक पीढ़ियों बाद दमघोष हुआ था। उसका पुत्र शेषपाल तथा शेषपाल का पुत्र चन्द्रब्रह्म था। इसने एक विशाल महोत्सव किया था। जिस स्थान पर यह महोत्सव हुआ था

उसी का नाम महोबा पड़ गया था और चन्द्रब्रह्म के वंशज चंदेल कहे जाने लगे। चन्द्रब्रहम् के पश्चात् का कुछ समय का इतिहास अनुपलब्ध है किन्तु इस वंश के नन्नुक देव से स्पष्ट इतिहास प्राप्त होता है। कालचक्र की दृष्टि से यदि अवलोकन किया जाय तो बुन्देलखण्ड के वृहत् क्षेत्र पर दीर्धकालीन शासन परम्परा में केवल दो ही राजवंशों को इतिहास में अमरता प्राप्त करने को गौरव प्राप्त हुआ है। इनमें से एक चंदेल और दूसरा बुन्देलों का है। विश्वप्रसिद्ध खजुराहों के मंदिर भी चंदेलकालीन है।

uUu|d n|o ¼800&825 b|-½ %–

इसने पड़िसरों को मऊ के युद्ध में परास्त किया था, जिससे कुछ धसान नदी के पश्चिम की ओर चले गये थे और कुछ दक्षिण की ओर आये जो लोग दक्षिण की ओर आए उन्होंने प्राचीन तेली राजा को परास्त कर अपना राज्य स्थापित किया और उचेहरा को राजधानी बनाया इसी युद्ध से चंदेलों के राज्य की नींव पड़ी। डॉ. बोस ने नन्नुक को चंद्रवंश का प्रथम ऐतिहासिक सम्राट कहा है।

t; 'kfDr fot; 'kfDr ¼850&857b|-½ :–

ये दोनों वाक्पति के पुत्र थे। वाक्पति की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र जय शक्ति सिंहासन पर बैठा। उसे जेजा भी कहते है। जय शक्ति के पुत्र न था उसकी पुत्री नट्टा देवी का विवाह कलचुरी राजा को लल्ल देव से हुआ था। जय शक्ति ने जिस भू भाग पर शासन किया वह जैजाक भुक्ति के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

जय शक्ति के निधन के पश्चात् उसका छोटा भाई सिंहासन रूढ़ हुआ। उसने बंगाल के राजा देव पाल से मित्रता कर संपूर्ण बुन्देलखण्ड पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

बारीगढ़ का विजय दुर्ग विजय शक्ति ने बनवाया था, जिसे 1746 ई. में जयाजी शिंदे ने तोड़ डाला था।

;'kkoe|u ¼825b|-&40b|-½ :–

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र यशोवर्मन सिंहासनारूढ़ हुआ। इसके दो विवाह हुए थे। उसकी एक रानी का नाम नर्म्म देवी और दूसरी का नाम पुष्पा था। चन्द्रवंशीय प्रारंभिक शासन नन्हुक, राहिल, वाक्रशक्ति, जय वर्मन, विजय वर्मन एवं हर्ष ने प्रतिहारों के सामन्त के रूप में बुन्देलखण्ड में शासन किया लेकिन जब यशस्वी शासक यशोवर्मन हुआ तो उसने प्रतिहारों की सामंतशाही जंजीरों का तोड़कर स्वतंत्र शासन की स्थापना की थी जो तेरहवीं शताब्दी तक की दीर्धवधि तक चलता रहा। उसने तत्कालीन खस, मालव, चेदि, कुरू, गुर्जर, प्रतिहारों को जीतकर कालिंजर के कलचुरियों को परास्त कर और उनसे कालिंजर ले लिया था। वह कन्नौज के राजा को हराकर वहां से विष्णु की प्रतिमा छीन लाया था। खजुराहो शिलालेख से 1011 के अभिलेख में उसकी विजयों का उल्लेख है। यशोवर्मन ने अपने राज्य की सीमाएँ उत्तर में यमुना से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक पहुँचा दी थी।

?kxno ¼940&999 bZ-½ %&

यशोवर्धन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र घंगदेव सिंहासन पर बैठा। धंग को अनेक इतिहासकारों ने नंद कहा है। धंगदेव शैवमत का उपासक था। उसके शासनकाल में कपिलनाथ मंदिर मडपुरा (समथर) कपिलनाथ मठ, महेबा (ओरछा राज्य) शिवमंदिर मतंगेश्वर, नॉदचॉद पुरा (पन्ना), स्वर्गेश्वर महादेव, सर्वेश्वर, गुप्तेश्वर, महादेव मठ, मऊ(छतरपुर), शिवमठ–टोला, चंदेरी, नारायणपुर, जसबंत नगर, भेलसी, देरी, कोटरा, बड़ागांव घसान(टीकमगढ) निर्मित हुए थे, जो चंदेलों के स्थापत्य कला के अद्भुत चमत्कार बने हुए है। खजुराहों एवं छतरपुर के सूर्य मंदिर राजा घंगदेव ने बनवाए थे।

घंगदेव ने प्रतिहार, अंग, राधा कौशल आंध्र और कुचल पर आक्रमण कर चंदेलों की कीर्ति का विस्तार किया था।

xkMokuk jkT; ¼xkM jkT;½ :–

गौड़ चन्द्रवंश के क्षत्रिय थे। गोड़ों की राजधानी सबसे पहले गढ़ा (जबलपुर) मंडला में थी। गोडवाना राज्य विस्तृत भू–भाग में फैला था। बुन्देलखण्ड में यह राज्य

धसान नदी से नर्मदा के मध्यपूर्वी दक्षिणी भाग में था। पूर्वकाल में गोड़ लोगों का राज्य उत्तर में देवगद और दुहाही तक पहुंच गया था। संपूर्ण गोड़वाना राज्य 52 सूबों में विभक्त था और प्रत्येक सूबों में 350 से 750 तक ग्राम थे।

गढ़ामण्डल के मोतीमहल शिलालेख की वंशावली तथा रामनगर में प्राप्त वंशावली के अनुसार यादव राज 664ई. से अजर्फनदास 1491ई. तक 40 राजाओं ने राज्य किया था। अर्जुनदास की मृत्यु के बाद अमानदास उर्फ संग्रामसिंह 1491ई. में गढ़ा का राजा हुआ था।

nyir 'kkg ¼1541&1548bZ-½ :–

अपने पिता संग्रह शाह की मृत्यु के पश्चात् राजा हुआ था, दलपत शाह का विवाह चंदेल राजा की कन्या दुर्गावती से हुआ था विवाह के 4 वर्ष बाद दिवंगत हो गया।

jkuh nqxkZorh ¼1548&1563bZ-½ :–

पति की मृत्यु के उपरांत एवं पुत्र वीर नारायण अल्पवयस्क होने के कारण स्वयं शासन संचालन किया। उसके राजकोष में असंख्य धन था तथा प्रजा धन–धान्य से सम्पन्न थी।

रानी दुर्गावती की मृत्यु के पश्चात् दलपत शाह के छोटे भाई चंद्रशाह ने (1564–65ईं.) तक, चंद्रशाह के छोटे पुत्र मधुकर शाह (1575–1590)तक, मधुकर शाह के पुत्र प्रेमनारायण(1590–1632ई.) तक, प्रेमनारायण के पुत्र हृदयशाह(1633–1704ई0) तक, इसके पश्चात् छत्रशाह (1704–1711ई.) तक, केशरीसिंह ने (1711–1722ई.)तक, नरिन्द्रशाह (1723–1731ई.)तक, महाराज शाह (1732–1743ई.), शिवराज शाह (1743–1750ई.) तक, दुर्जन शाह (1750–1751ई.) तक, निजाम शाह ने (1771–1774ई) तक, तथा नरहरशाह ने (1771–1774ई.) तक शाह शासको ने शासन किया।

cqUnsy[k.M ds cqUnsyk jkT; %&

(1) vkjNk jkT; :– रूदुप्रताप सिंह–रूद्रप्रताप (1501–1531ई.) ओरछा राजवंश के आदि पुरूष माने जाते है। वह सिकन्दर लोदी (1489–1517), इब्राहिम लोदी

(1517–26) और मुगलवंश संस्थापक सम्राट बाबर (1526–30ई.) के समकालीन थे। उन्होंने इब्राहिम लोदी के समय सवा करोड का विशाल बुन्देला राज्य स्थापित कर लिया था जो कालिंजर से काल्पी तक फैला हुआ था। ओरछा का प्राचीन नाग गंगापुरी था जो पड़िहारो की राजधानी थी 1–58 रूद्रप्रताप ने नहर की सुरक्षा के लिए 12 मील के विस्तार में नगर कोट का निर्माण कराया और भव्यराज प्रसाद तथा अन्तःपुर के नाम पर एक भव्य आकर्षण नौ चौकियों नामक महल का निर्माण कराया।[55]

Hkkjrh pUn¼1531&54 b-½ – रूद्रप्रताप की मृत्यु के पश्चात उनके ज्योष्ठ पुत्र भारती चंद को ओरछा की गद्दी मिली। उन्होंने सिंध से टमस तथा यमुना से नर्मदा के मध्य बाला दो करोड रूपया वार्षिक आय का ओरछ राज्य बना लिया था। भारती चंद के एक पंत्र पैदा हुआ था जो उनके जीवनकाल में ही कर गया था। 1554 ई0 में उनका निधन ओरछा में हो गया था।

e/kdj'kkg ¼1554&92b-½ – ये भारती चंद के भाई थे। ओरछा राज्य के राजा बनने के पहले ये शिवपुरी के जागीरदार थे। ये कृष्ण उपासक थे जबकि उनकी महारानी गणेश कुंवर राम उपासक थी। मधुकर शाह मथुरा से राजा माधव और जुगलकिशोर की मूर्तियां ओरछा लाये थे तथा रानी गणेश कुंवर अयोध्या से भगवान रामराजा की मूर्तियॉ लाई थी जो अभी भी रामराजा मंदिर ओरछा में विराजमान है। सन् 1592ई. में इनका स्वर्गवास हो गया। मधुकरशाह के आठ पुत्र थे जिन्हें निम्न प्रकार व्यवस्थित किया गया था।

(1) रामशाह ओरछा के राजा हुए, (2) होरलदेव को पिछोर की जागीर, (3) झुजीत को कछौआ (4) वीरसिंह को बडौनी (5) हरिसिंह देव को भसनेह (6) प्रताप राव को कौंच पहारी (7) रतन सिंह को गौर झाव (8) रनधीर सिंह को शिवपुर की जागीर दी गयी थी। लेकिन कुछ समय बाद यह सभी अपने को स्वतंत्र राजा मानने लगे थे।

मधुकर शाह अपने धर्म के बड़े आस्थावान और मुगल शासकों के विरोधी रहे इस कारण अपने आत्मसम्मान और धर्मरक्षा के लिए मुगलों से अनेक युद्ध करना पड़े।[57]

jke'kkg ¼1592&1605bZ-½ :– रामशाह अपने अधीनस्थ जागीरदारों को दबा न सका। वे स्वतंत्र हो गये और ओरछा रियासत में 22 जागीरें हो गयी। इनमें से 7 वे इन्ही के भाई बंधु थे और अन्य 15 में परमार, कछवाह और गौड़ थे। अकबर के बाद जहांगीर ने वीरसिंह देव को ओरछा की गद्दी दे दी और रामशाह को चंदेरी और बानपुर की जागीर दे दी।

ohjflag nso iFke ¼1605&27bZ-½ :– वीरसिंह देव अत्यंत प्रतिभाशाली साहसी और पराक्रमी योद्धा थे। ये कुशल राजनीतिक, उदार, न्यायशील, यशस्वी, बुन्देली स्थापत्य कला के प्रणेता एवं साहित्यकारों के आश्रयदाता थे। संपूर्ण बुन्देलखण्ड एवं कुछ पश्चिम में व होलखण्ड उनके शासन के अंतर्गत था। जिसमें 81 परगने 12500 ग्राम थे जिनकी 2 करोड़ रूपये वार्षिक आय थी। वीरसिंह देव ने ओरछा को पुनः बनाया और उसका नाम जहॅागीर पुर रख दिया था। ओरछा के राजा वीरसिंह देव बड़े योग्य शासक थे बामौनी झांसी और दतिया के किले इन्हीं के बनवाए हुए है। दतिया के किले को बनवाने में 8 वर्ष 10 माह 26 दिन लगे थे और 32 लाख नब्बे हजार नौ सौ अस्सी रूपये खर्च हुये थे। सन् 1627 ई0 में 61 वर्ष की आयु में वीरसिंह देव का स्वर्गवास हो गया था।

tq>kj flag ¼1627&34bZ-½ :– वीरसिंह देव के 12 लडकों में से जुझार सिंह सबसे बड़ा था यही सिंहासनारूढ़ हुआ लेकिन यह अत्यंत अभिमानी और संदेहशील था वि.सं. 1685 में यह अपने विमाल हरदौल से किसी कारण अप्रसन्न हो गया 28 अक्टूबर 1628 को जहॅागीर की मृत्यु होने पर खुर्रम शाहजहॉ के नाम से मुगल सम्राट बना। सन् 1662 ई0 में जुझार सिंह दक्षिण से ओरछा लौट रहे थे उन्होंने मार्ग से चौरा गढ बुर्रा पर आक्रमण कर राज्य प्रेमशाह और मंत्री जयदेव को मार डाला और उसका किला चौरागढ़ अपने राज्य में ले लिया।

iqc/kd noh flag pansjh ¼1634&36bZ-½ %& जुझार सिंह की मृत्यु के पश्चात शाहजहां ने चंदेरी को ओरछा का प्रबंधक बना लिया और तब औरंगजेव ओरछा आया उसने अनेक भवनों और चतुर्भुज मंदिर के अग्रभाग को गिरवा दिया। जब बुन्देला

जागीरदारों ने देवीसिंह का विरोध करके जुझार सिंह के अल्पायु पुत्र पृथ्वीराज को राजा बनाने का निश्चय किया तब राजा देवी सिंह ओरछा छोडकर चंदेरी चले गये।

igkMfl g ¼1641&53b-½ :– शाहजहॉ के द्वारा पहाडसिंह को ओरछा का राज देने के बाद सं. 1708 में चौरा की जागीर भी दे दी गयी साथ ही उसका एक हजारी मनसव भी बढाया गया।

पहाड़ सिंह के पश्चात् सुजान सिंह ने 1653–72ई तक इंद्रमणि ने 1672–75ई. तक, यशवंत सिंह ने 1675–84ई. तक भगवंत सिंह 1684–89ई. तक, उदोतसिंह 1689–1786ई. तक पृथ्वीसिंह ने 1736–53ई. तक, सामंत सिंह ने 1753–65ई. तक हरी सिंह 1765– 67ई. तक, पजन सिंह 1767–72ई. तक, मानसिंह 1772–75 ई. तक, भारती चंद ने 1775–76ई. तक 1765 से 1775ई. तक 10 वर्ष के मध्य 4 अस्थिर राजा हुये जो मरोठो के आक्रमण का सामना करने में सक्षम न हुये, विक्रमाजीत सिंह 1776–1817ई. तक धर्मपाल सिंह 1817–34ई, तेजसिंह 1834–41ई. तक, सुजान सिंह द्वितीय ने 1841–54ई. तक समीर सिंह 1854–74ई. तक, प्रताप सिंह 1874–1930ई. तक, ततपश्चात वीरसिंह देव द्वितीय ने 1930 से 1956ई. तक बुन्देला शासकों ने ओरछा राज्य पर राज किया।

pnjh ckuij – सन् 1609ई. में मुगल सम्राट जहॉगीर ने महाराज वीरसिंह देव (प्रथम) के भाई रामशाह को बार की जागीर प्रदान की थी। 1612ई. में उनकी मृत्यु हो गयी।

nfr;k jkT; :– ओरछा के राजा वीरसिंह देव प्रथम (1605–27) के 12पुत्रों में से एक पुत्र भगवान दास थे जिन्हें पलेरा की जागीर प्राप्त हुई थी। सन 1826 में जब भगवान दास आगरा से लौंटे तो उनके पुत्रों ने पलेरा में प्रवेश न करने दिया।

पारिवारिक कलह टालने के उद्देश्य से वीरसिंह देव ने बडौनी जागीर खर्च के लिए दतिया का अपना महल निवास के लिए और 4 सरदार 300 घुडसवार रक्षा के लिए देकर दतिया भेज दिया। आगे चलकर उन्होंने अपनी जागीर का विस्तार सिन्ध से बेतवा तक कर लिया सन् 1655 में भगवान दास की मृत्यु हो गयी।

भगवान दास की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र शुभकरण ने (1655—83ई0) तक, शुभकरण के बड़े पुत्र दलपत राव ने (1683—1707) दलपत राव के पश्चात उनके पुत्र भारती चंद ने (1707—1711ई. तक) तत्पश्चात रामचंद्र ने (1711—1736ई.), इंद्रजीत सिंह ने (1736—1762ई) शत्रुजीत सिंह ने (1763—1801ई.), पारीछत ने (1801—1839ई.) विजय बहादुर (1839—56ई.)भवानीसिंह ने (1857—1907ई.) ततपश्चात गोविंन्द सिंह ने (1907—1952ई.) तक दतिया राज्य पर शासन किया।

iUuk jkT; :— ह्दयशाह (1732—39ई.) अपने पिता छत्रसाल के समय गढ़ाकोटा में रहा करते थे जिसके पास उन्होंने हृदय नगर ग्राम भी बसा लिया था। ये विलासी प्रवृत्ति के राजा थे। हृदयशाह के पश्चात् सभासिंह (1739—52ई.), अमानसिंह ने (1752—58ई.), हिन्दूपत ने (1758—76ई.), अनिरूद्ध सिंह ने (1776—80ई.), घोकल सिंह ने (1758—98ई.), किशोरी सिंह ने (1798—1834ई), हरवंशराय (1834—49ई.) नृपतिसिंह (1849—70ई.), रूद्रप्रताप (1870—93ई.), लोकपाल सिंहने (1893—97ई.), माधवसिंह ने (1897—1902ई.), तक और यादवेन्द्र सिंह ने (1902—64 ई.) तक पन्ना राज्य में शासन किया।

tSrijq jkT; :— पन्ना के महाराज छत्रसाल ने बॅटवारे में जैतपुर राज्य अपने द्वितीय पुत्र जगतराज (1732—48ई.) को दिया था, जगतराय की मृत्यु के पूर्व ही उनके ज्येष्ठ पुत्र कीरत सिंह को जैतपुर का राज्य और शेष पुत्रों को जागीरें दी गई थी।

सन् 1758 में जगतराज की मृत्यु के पश्चात् कीरत सिंह के छोटे भाई पहाड़सिंह ने राज्य के कामदारों एवं सैनिकों को अपने पक्ष में भर जैतपुर गद्दी पर अधिकार कर लिया। सन् 1765ई. में पहाड़सिंह की मृत्यु के पश्चात् गजराजसिंह ने 1765 से 1789ई. तक, केशरीसिंह ने 1789 से 1813ई. तक, पारीछत ने सन् 1813 से 1843ई. तक शासन किया इसके पश्चात सन् 1843 में राज्य से च्युत कर देने के बाद जैतपुर राज्य धुन्धासिंह के नाती लक्ष्मण सिंह के पुत्र खेतसिंह को रतनसिंह की अनुशंसा पर दे दिया गया था। सन 1849ई. में खेतसिंह के निःसंतान निधन होने पर कंपनी सरकार ने उत्तराधिकारी के अभाव में जैतपुर राज्य का विलय कंपनी राज्य में कर दिया था।

vt;x< jkT; :– जैतपुर के राजा पहाड़सिंह ने बॉदा अजयगढ़ का भू–भाग अपने भतीजे गुमानसिंह को दे दिया था। कालान्तर में ग्रह कलह के कारण गुमान सिंह ने बॉदा का भू–भाग भतीजे वखत सिंह को दिया था। बखत सिंह ने अपना शासन सन् 1792ई. से 1837ई. तक चलाया इसके पश्चात् माधवसिंह ने सन 1837ई. से 1849ई. तक महीपत सिंह ने सन् 1849ई. से सन् 1853ई. तक, विजय सिंह ने सन् 1853ई. से 1855ई. तक अजयगढ राज्य में शासन किया। सन् 1855ई. से 1858ई. तक राज्य में अशांति रही तत्पश्चात् विजय सिंह के पिता महीपत सिंह की रानी के कथनानुसार रंजोर सिंह को अजयगढ का राजा स्वीकार किया गया। राजा की अल्पवयस्क अवस्था के कारण रानी महीपत सिंह को संरक्षक बनाया गया। रंजोर सिंह ने सन् 1859ई. से 1918ई. तक ततपश्चात रंजोर सिंह के पुत्र भोपाल सिंह ने 1818ई. से 1841ई. तक तथा सन् 1841 से 1858ई. तक पुण्यपाल ने अजयगढ राज्य में शासन किया।

pj[kkjh jkT; – चरखारी नगर का विकास जैतपुर के राजाजगतराय (1732–58) के समय हुआ था। उनके पश्चात् कीरतसिंह के द्वितीय पुत्र खुमान सिंह को चरखारी क्षेत्र का राज्य 1765ई. में दिया गया। खुमान सिंह ने 1765ई. से 1782ई. तक तत्पश्चात् विजय बहादुर ने सन् 1782ई. से 1829ई. तक तथा रतनसिंह ने सन् 1829 से 1862ई. तक तक चरखारी राज्य में शासन किया।

fctkoj jkT; – जैतपुर के संस्थापक राजा जगतराय के पुत्र पहाड़सिंह ने भाई वीरसिंह को विजावर का 1 लाख रूपया का भू–भाग दिया था, वीरसिंह की मृत्यु के पश्चात सन 1793ई. से 1810 ई. तक केशरी सिंह ने, सन् 1810ई. से 1833ई. तक रतन सिंह ने सन 1833ई. से सन् 1847ई. तक लक्ष्मण सिंह ने सन 1847ई. से 1899ई. तक भानुप्रताप सिंह ने, सन् 1899 से 1940ई. तक सावंतसिंह ने तथा 1940 से 1983ई. तक गोविन्द सिंह ने बिजावर राज्य में शासन किया।

'kkgx< jkT; :– सन् 1744ई. में पृथ्वीराज ने (1744ई. सन् 1772ई.) अपने भाई पन्ना के राजा सभा सिंह (हृदयशाह के पुत्र) से तीन लाख रूपये देकर शाहगढ़ क्षेत्र प्राप्त कर शाहगढ राज्य स्थापित किया था। तत्पश्चात पृथ्वीराज के पुत्र हरीसिंह ने सन् 1772ई. से 1785ई. तक, मर्दन सिंह ने सन् 1785 से 1810 ई. तक, अर्जुन सिंह ने सन्

1810 से 1842 ई. तक एवं बखतवली सिंह ने सन् 1842 से 1858ई. तक शाहगढ़ राज्य का शासन किया।

lkxj jkT; :– सन् 1735 में बाजीराव पेशवा ने छत्रसाल से बुन्देल खण्ड का तृतीयांश लेकर अपने निर्भीक और बलवान रसोइए रत्नगिरि जिले के नेवरे ग्राम के कराणे ब्राहम्ण गोविन्दराव बल्लाल खैर को बुन्देलखण्ड के मराठी भू–भाग का सूबेदार नियुक्त किया था।

सागर राज्य में गोविन्द बल्लाला खैर ने सन् 1735 से 1761 ई. तक, बालाजी गोविन्द ने 1762ई. से सन् 1800ई. तक, रधुनाथ राव आबा साहब ने सन् 1800 से सन् 1802ई. तक बलवंतराव बाबा साहब ने सन् 1802 से 1818ई. तक शासन किया। बलबंत राव के पश्चात् 11 मार्च 1818ई. को विनायक राव ने आत्मसमर्पण कर दिया कंपनी सरकार ने सागर का विलय अपनी राज्य में कर लिया।

>klh jkT; :–मराठों और बुन्देलों के मध्य समझौता हुआ इसके फलस्वरूप झॅासी बरूआ सागर, तथा मऊरानीपुर के क्षेत्र मराठों को प्राप्त हो गये।

नारोशंकर के पश्चात् सन् 1757ई. में रधुनाथराव हरी निवालकर झॅासी के सूबेदार हुये। रधुनाथ राव के निधन के पश्चात् उनके छोटे भाई शिवराज भाऊ ने 1794 से 1815ई. तक, रामचन्द्र राव ने सन् 1815 से 1835ई. तक, रघुनाथ राव ने सन् 1835 से 1838ई. तक एवं कोर्ट ऑाफ वार्डस ने 1832 से 1842ई. तक झॅासी पर राज्य किया।

सन् 1851 में 16 वर्ष की आयु में लक्ष्मीवाई के एक पुत्र हुआ जो तीन माह पश्चात् स्वर्गवासी हो गया। वृद्धावस्था में पुत्र शोक के कारण अस्वस्थ गंगाधर ने भविष्य में गद्दी की उत्तराधिकारी के लिये 20.11.1953 को झांसी के राजनीतिक प्रतिनिधि मेजर एलिश के समक्ष अपनी सौतेली सास चिमणाबाई के भाई आनंदराव वासुदेव गुरसराय वालों को जो वासुदेव शिवराम निवालकर के पुत्र थे। जिन्हें गोद लिया था और पुत्र का नया नाम दामोदर निवालकर रखा गया था। 21.11.1953 को गंगाधर का स्वर्गवास हो गया।

लक्ष्मीबाई ने लार्ड डालहौजी से दामोदर राव को झांसी का राज्याधिकारी स्वीकार करने का आवेदन दिया जिसे लार्ड डलहौजी ने अस्वीकार कर झॅासी का विलय कम्पनी राज्य में कर लिया।

tkyku ¼dkYih½ :– सागर के सूबेदार गोविन्द बल्लभ खैर की ओर से उत्तरी–पश्चिमी बुन्देलखण्ड के राजाओं से चौथ वसूल करने हरी विठ्ठल विछूंरकर भी थे इन सरदारों ने जालौन काल्पी, हमीरपुर क्षेत्र से 96 लाख रूपया गोविन्द बल्लभ खैर ने दिया था। सन् 1761ई. में पानीपत के तृतीय यृद्ध में अफगानों ने गोविन्द बल्लाल को मार डाला तब बालाजी गोविन्द सागर के तथा छोटे पुत्र गंगाघर गोविन्द काल्पी के सूबेदार बन गये।

गंगाधर गोविन्द ने सन् 1761 से सन् 1800ई. तक, गोविन्द गंगाघर उर्फ नाना साहब ने सन् 1800ई. तक गोविन्द गंगाधर उर्फ नाना साहब ने सन् 1800ई. 1822ई. तक एवं बालाजी गोविन्द ने सन् 1822ई. से 1832ई. तक काल्पी राज्य पर राज किया।

ckank jkT; :– सागर के सूबेदार गोविन्द बल्लाल खैर की ओर से हमीरपुर के कुछ भाग सहित बांदा परिक्षेत्र में कृष्णा अनंत ताम्बे नियुक्त था। सन् 1766–67 में हिम्मत बहादुर गुसाई ने लखनऊ के नबाव शुजाउद्दौला से करीम खॅा के नेतृत्व में सैनिक सहायता प्राप्त कर बॅादा पर आक्रमण कर दिया। पेशवा माधवराव नारायण राव ने बुन्देला राजाओं पर नियंत्रण स्थापित करने के लिये अली बहादुर को 1789ई. में बॅादा का नबाव बनाकर भेजा था। उसने हिम्मत बहादुर गुसाई को राज्य देने का लालच देकर अपने पक्ष में कर दोनों ने संयुक्त रूप से बॅादा पर आक्रमण कर गुमान सिंह को पराजित कर दिया और बॅादा को अपना ठिकाना बनाकर, पन्ना, बिजावर, चरखारी, अलीपुर, जैतपुर इत्यादि राज्यों पर आक्रमण कर अपने अधीन कर भारी कर बसूल किये।

अलीबहादुर की मृत्यु के पश्चात जुल्फिकार अली को बांदा का नबाव घोषित कर दिया सन् 1849ई. में जुल्फिकार अली की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अली बहादुर नबाव हुआ था।

Nrjiij jkT; :– इस राज्य की स्थापना सोने जू ने 1785ई. के मध्य की थी। सन् 1790–93 के भव्य मराठा सूबेदार अलीबहादुर और उसके सहायक हिम्मत बहादुर के आक्रमणों से उत्पन्न अराजकता का लाभ उठाकर प्रताप सिंह जू ने पन्ना, विजावर एवं चरखारी राज्यों की थोड़ी–थोड़ी भूमि अधिकार में करके राज्य का विस्तार कर लिया।

छतरपुर राज्य में प्रताप सिंह ने सन् 1816 से 1854ई. तक, जगतराय ने सन् 1854ई. से 1867ई. तक, विश्वासनाथ सिंह ने सन् 1867 से 1932ई. तक एवं भवानी सिंह ने सन् 1932ई. से 1948 तक शासन किया। 19.04.1948 को इस राज्य का विलय विन्ध्यप्रदेश में किया गया।

ukxok fjcb jkT; – यह यादव राज्य जैतपुर के छुटई स्टेशन के निकट था जिसका संस्थापक अराजक किलेदार लक्ष्मण सिंह दौआ था जिसे केशरी सिंह ने अजयगढ का किलेदार बना दिया था।

तत्पश्चात् जगत सिंह ने सन् 1809 से 1867ई. तक, सवाई लाड़ली दुलैया ने सन् 1867ई. तक 1882 ई. तक, विश्वनाथ सिंह ने सन् 1882ई. से 1937ई. तक एवं रतन सिंह ने सन् 1937 से 1948 तक नौगवां रिबई राज्य का शासन किया।

xkfjgkj jkT; :– अजयगढ के राजा गुमान सिंह के समय पं. राजाराम तिवारी भूरागढ़ के किलेदार थे। राजाराम तिवारी बाद में गुमान सिंह से बिगड़कर धीरे धीरे स्वतंत्र हो गये तत्पश्चात राजघर रूद्रसिंह ने सन् 1846 से 1877ई. तक, राजबहादुर श्यामले प्रसाद ने सन् 1877 से 1904ई. तक, अतिपाल सिंह ने सन् 1904 से 1935 ई. तक एवं अवधेन्द्र प्रताप सिंह ने सन् 1935 से 1948 तक गौरिहार राज्य का शासन किया।

dkfytj d pkc;kuk jkT; :– पन्ना के राजा सरमेद सिंह के समय में कलिंजर में राम किसुन चौबे किलेदार थे। बाद में वे यहॅा के स्वतंत्र राज्य बन बैठे। यह जुझौति ब्राह्मण थे। इनकी प्रवृत्त उदण्ड और अराजक थी। कालान्तर में यह राज्य रामकृष्ण चौबे के सात पुत्रों तथा एक भाग परिवार के कामदार गोपाल लाल कायस्थ सहित आठ भागों में विभाजित कर दिया गया।

cUny[k.M dk jktuhfrd bfrgkl

बुन्देलखण्ड का क्रमबद्ध इतिहास मौर्य साम्राज्य के साथ आरम्भ होता है। मौर्यवंश में चन्द्रगुप्त मौर्य बिन्दुसार और अशोक का नाम उल्लेखनीय है। मौर्य साम्राज्य के चार विभाग थे प्रत्येक विभाग की राजधानी में एक शासक होता था। बुन्देलखण्ड उज्जैन के एक शासक के अधीन था। अशोक के शासन काल में धर्म प्रचारार्थ लिखाये गये शिलालेख अब भी इसमें मिलते है।

श्री उमाशंकर शुक्ल के अनुसार जब समुद्रगुप्त दिग्विजय को निकला तो वह सागर जिले से होता हुआ दक्षिण को गया था। हटा तहसील में 24 सोने के गुप्तवंशीय सिक्के और एरन में ''रजभोग नगर'' इस बात के प्रमाण है।

अशोक के पश्चात् मौर्य शासक अपने साम्राज्य की रक्षा न कर सके। पुराणों से ज्ञात होता है कि मौर्यवंश का अंतिम राजा वृहदृथ अपने सेनापति पुष्यमित्र (पुष्यमित्र) द्वारा मारा गया और शुंग वंश की स्थापना हुई।

डॉ. बलभद्र तिवारी ने शुंग वंश का संबंध बुन्देलखण्ड से स्थापित करने हेतु लिखा है–''शुंगवंश भार्गव च्यवन के वंशधर शुनक के पुत्र शौनक से उद्भूत है, ये दक्षिण बुन्देलखण्ड से संबंधित रहे है। शुंग लोग 36 वर्ष ही राज्य कर पाये।

शुंग वंश के पश्चात् बुन्देलखण्ड पर नागों शकों आदि विभिन्न शासकों का शासन रहा। डॉ0 बलभद्र तिवारी के अनुसार –भारतीय तथा बुन्देलखण्ड के इतिहास में मौर्यो के उपरान्त बाकाटकों और तत्कालीन गुप्तों का महत्वपूर्ण योगदान है।

डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी लिखते है–''बाकाटकों का राजकुल गुप्तों के समकालीन सबसे शक्तिमान राजवंशों में से एक था। उनके अभिलेखों तथा पुराणों से सिद्ध है कि अपने उत्कर्ष के काल में उनका प्रभुत्व संपूर्ण बुन्देलखण्ड, मध्यप्रदेश, बरार, आसमुद्र, उत्तरी दक्षिण (दक्खन) केऊपर था। इसके अतिरिक्त दुर्वल पडोसी राज्यों के ऊपर भी उनका आधिपत्य प्रतिष्ठित था।

सन् 345ई. के पश्चात बाकाटक वंश गुप्तों के प्रभाव में आया। पॉचवी शताब्दी के मध्य तक वाकाटक गुप्तों के आश्रित रहे।

गुप्तों के शासनकाल में बुन्देलखण्ड की सीमाओं में विस्तार हुआ। स्कन्द गुप्त के शासनकाल में ही हूणों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे। हूणों का भी कुछ समय तक

इस प्रदेश पर शासन रहा। हूणों के पश्चात् यशोवर्धन और हर्षवर्धन का शासन है। ''हर्ष के काल में बुन्देलखण्ड ही नहीं उसके द्वारा समस्त शासित भू–भसाग की विशेष उन्नति हुई। चीनी यानी ह्वेनसांग इसी समय में भारत आया था उसने अपनी यात्रा में जुझौति (बुन्देलखण्ड) महेश्वरपुरा और उज्जैन की समृद्धि का अच्छा वर्णन किया है।

हर्ष के पश्चात् उसका राज्य भी छिन्न भिन्न हो गया और समस्त उत्तर भारत छोटे छोटे राज्यों में बंट गया।

हर्ष के पश्चात् बुन्देलखण्ड में कलचरियों और चन्देलों का भी अधिपत्य रहा। ''हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद चन्देलों के समय में बुन्देलखण्ड की लाक्षणीय उन्नति हुई। चन्देल शासन के तीन सोपान हैं हर्ष से धंग का उदीयमान शासनकाल धंग से विजयपाल तक समृद्धिपूर्ण शासनकाल तथा विजयपाल से पृथ्वीवर्मा तक पतनोन्मुख काल। चन्देलों का स्वर्णकाल धंग के समय से माना जाता है।

चन्देलों ने विस्तृत भू–भाग पर अपना अधिकार किया। चन्देलों के अर्थात् रहने वाला भाग घसान नदी के पूर्व और विन्ध्यांचल पर्वत के उत्तर पश्चिम में था। उत्तर में यह यमुना नदी और दक्षिण में केन नदी तक फैला हुआ था। चंदेलवंश का शासनकाल नवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। इस वंश के संस्थापक नानक देव थे। इन्हीं नानुक या नन्नुक का पौत्र जेजा अथवा जयशक्ति था जिसके नाम पर चन्देलों के राज्य का नाम जेजाकभुक्ति पड़ा।

इस वंश में अनेक प्रतापी शासक हुए जिन्होंने बुन्देलखण्ड की प्रगति और विस्तार किया।

dypjh jkT; :– चन्देलों के समकालीन राजनीतिक क्षितिज पर अपना महत्व स्थापित करने वाला कलचुरि वंश की उल्लेखनीय है ''कलचुरि–वंश–पुराणों के अनुसार कल्चुरि है। ह्रयवंशी कार्तवीर्य अर्जुन के वंशज है।'' इसके संस्थापक महाराज कोकल्ल ने जबलपुर के पास त्रिपुरी को अपनी राजधानी बनाया अतएव यह वंश ''त्रिपुरी के कल्चुरि'' नाम से भी विख्यात है।

डॉ. विवेकदत्त झो लिखते है –''हूणों के आक्रमण के दौरान अनेक राजनीतिक सांस्कृतिक केन्द्र नष्ट हो गये। बुन्देलखण्ड में राजनीतिक अस्थिरता का सूत्रपात हुआ।

छोटी छोटी रियासतों में विभक्त बुन्देलखण्ड को जिन बाह्य शक्तियों ने पद दलित किया उनमें सम्राट हर्ष, राष्ट्रकूट, दंति दुर्ग और गोविन्द तृतीय के नाम उल्लेखनीय है। अंततः त्रिपुरी के कल्चुरि नरेशों ने बुन्देलखण्ड को राजनीतिक स्थिरता प्रदान की। उन्होंने सांस्कृतिक पुनरूत्थान के सन्दर्भ में उल्लेखनीय कार्य किया।

लगभग तीन सौ वर्षो तक कल्चुरियों का शासन दक्षिणी बुन्देलखण्ड पर रहा, तत्पश्चात चन्देलों की बढती हुई शक्ति से उनका प्रभाव कम होता गया। 12वीं शती में चन्देलों और गाहडवालौ की बढती हुई शक्ति के सामने कल्चुरि वंश के अंतिम राजा नरसिंह (1155ई.), जयसिंह और विजय सिंह (1180ई.) न टिक पाए। 1200ई. में देवगिरि के राजा ने इस वंश का शासन अपने अधीन कर लिया। 14 लेकिन कल्चुरि शासकों का उत्तराधिकारी तैलोक्यमल्ल 1251ई. तक त्रिपुरी का अधिपति रहा, इस संबध में कुछ विशिष्ट साक्ष्यों की ओर – डां. विवेकदत्त झा ने संकेत किया है वे लिखते हैं – ''झुलपुर ताम्रपत्र द्वारा प्रदत्त सूचनाओं के आधार पर इतिहास में परिवर्तन आवश्यक हो गया है। विजयसिंह देव का उत्तराधिकारी त्रैलोक्यमल्ल 1251 तक त्रिपुरी का अधिपति रहा, यह निर्विवाद है।

वस्तुतः बुन्देलखण्ड के इतिहास में कल्चुरि और चन्देल दोनों ही वंशों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ''सभ्यता और संस्कृति का इतिहास यह दर्शाता है कल्चुरियों ने साधना, धर्म और चिन्ताधारा के क्षेत्र में अभूतपूर्व परम्परायें स्थापित की थी, जिन्हें बाद में चन्देलों ने और आगे बढ़ाया।

13वीं शताब्दी के अंत तक कल्चुरि और चन्देल दोनों ही प्रभावहीन व शक्तिहीन हो चले।

cUnyk dk mnHko vkj fodkl %–

चन्देलों के पश्चात् बुन्देलखण्ड का राजनैतिक इतिहास मुगल सत्ता के उदय और बुन्देलों के उत्कर्ष का इतिहास है।'' विक्रम की चौदहवी शताब्दी में काशी के गहरवार वंश की एक शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। इसने पहले जालौन के मुहीनी ग्राम को अपना निवास स्थान बनाया। वहॉ से उन्होंने इतिहास प्रसिद्ध गढकुंडार नामक किले पर अपना अधिकार जमाया। इस तरह उन्होंने ओरछा राज्य की नीव डाली। यह

वंश बुन्देला कहलाया। इस वंश की विवध शाखाओं का अधिकार बुन्देलखण्ड के अधिकांश भाग पर अन्त तक बना रहा।

बुन्देलखण्ड के आदि संस्थापक हेमकरण माने जाते है, जो 1100ई. के पूर्व हुए इसी वंश की नवीं या दसवीं पीढ़ी में महाराज रूद्रप्रताप हुए।'' बावर की मृत्यु के लगभग एक वर्ष पश्चात् बुन्देला राजा रूद्र प्रताप ने अप्रैल 1531ई. में बुन्देलों की प्रसिद्ध राजधानी ओरछा की नींव डाली।

महाराज रूद्रप्रताप के पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र भारती चन्द्र (सन् 1539) ने शासन संभाला। इनका शासनकाल 1539 से 1554ई. तक रहा।

इस शासनकाल में भारतीचन्द्र को विभिन्न मुगल शासकों से युद्ध करना पडे, किन्तु अपने भाइयों की मदद से अपनी स्थिति को सुद्रढ़ बनाये रखा। भारती चन्द्र को अपने राज्य की सीमाओं के विस्तार के लिए उत्तर भारत के मुगल शासकों की प्रतिकूल परिस्थितियों का लाभ भी मिला।

सन् 1954 में भारती चन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुज ''मधुकर शाह'' ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली और कुछ समय पश्चात् 1556 में हुमांयु की मृत्यु के पश्चात् अकबर ने शासन संभाला।

मुगल शासकों की राज्य विस्तार की आकांक्षाएँ बड़ी प्रवल थी। बुन्देलखण्ड पर भी उनके आक्रमण होते रहते थे। मधुकर शाह स्वतंत्रता प्रेमी शासक थे। अन्य बुन्देला शासकों की तरह वे मुगलों की अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहते थे। परिणामतः अनेक बार उन्हें मुगल सेना का सामना करना पड़ा। सन् 1573 में सैयद महमूद खॅा के नेतृत्व में मुगल सेना में मधुकर शाह पर आक्रमण किया।

सन् 1577 में अकवर ने सादिक खॅा के नेतृत्व में मुगल सेना ओरछा भेजी। इसी युद्ध में मधुकरशाह के पुत्र होरिलदेव बीर गति को प्राप्त हुए। सन् 1578ई. में मधुकरशाह को अकबर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। लेकिन शीध्र ही उनकी मुगल विरोधी कार्यवाहियॅा प्रारम्भ हो गई। परिणाम स्वरूप शहाबुद्दीन, आसकरन, शाहजादा मुराद के नेतृत्व में हुए मुगल आक्रमणों का सामना मधुकरशाह को करना पड़ा। सन् 1591ई. में मालवा के सूबेदार शाहजादा मुराद के आक्रमण के समय

मधुकरशाह ने चम्बल के धने जंगलों का आश्रय लिया। सन् 1592ई. के आसपास इनकी मृत्यु हो गई।

मघुकर शाह के होरलदेव, नरसिंह देव, रतनसेन, प्रतापराव, वीरसिंह देव, हरिसिंह देव क्रमशः आठ पुत्र थे। इनमें से बीरसिंह देव की मधुकर शाह ने 1592ई. में दतिया से लगभग छःमील दूर उत्तर पश्चिम में बडौनी नामक स्थान की जागीर दी।

वीरसिंहदेव की महात्वाकांक्षाओं एवं मुगलशासक विरोधी कार्यवाहियों के कारण भाई रामशाह व सम्राट अकबर से सदा विरोध रहा, लेकिन शाहजादा सलीम का खुदा संरक्षण उन्हें मिला।

शाहजादा सलीम जब जहॅागीर के नाम से सिंहासन रूढ हुआ, तत्पश्चात वीरसिंह देव ने अनेक मुगल अभियानों में वीरतापूर्वक अपना सार्थक सहयोग दिया। ''अंत तक वीरसिंह देव—जहॅागीर के संबंध मधुर बने रहे और उनकी मृत्यु जून—जुलाई 1627ई. में जहॅागीर कील मृत्यु (अक्टूबर 1627) के तीन चार माह पूर्व हो गई। वीरसिंह देव के पश्चात् उनकी ज्येष्ठ पुत्र जुझार सिंह को ओरछा की गद्दी मिली। ये ग्यारह भाई थे। समस्त राज्य जागीरों के रूप में भाइयों के बीच बट गया।

बुन्देल राजवंश में महाराज चम्पतराय का नाम भी महत्वपूर्ण है। डॉ. तिवारी के शब्दों में ''औरंगजेब की सहायता दारा के विरूद्ध करने पर इन्हें ओरछा के जमुना तक का प्रदेश जागीर में दिया गया। भले ही ये दिल्ली दरबार के उमराव बन गये पर सदैव बुन्देलखण्ड को स्वाधीन कराने में व्यस्त रहे। इसी क्रम में ये औरंगजेब से भिड़ गये। बुन्देलों ने चम्पतराय का साथ नहीं दिया, फलतः बुन्देलखण्ड को शाही सेना द्वारा रौदे जाने पर उन्होंने सन् 1964 में आत्महत्या कर ली।

महाराज चम्पतराय के पश्चात् उनके पुत्र छत्रसाल ने इस राज्य पर शासन किया। चम्पतराय के उपरांत महाराज छत्रसाल की बुन्देलखण्ड की स्वतंत्र सत्ता की हिमायत अविस्मरणीय है।

छत्रसाल ने मुगलों की आधीनता को स्वीकार नहीं किया। औरंगजेब ने छत्रसाल को दबाने की अनेक चेष्टायें की किन्तु सभी चेष्टायें व्यर्थ साबित हुई।

सन् 1707ई. में औरंगजेब की मृत्यु हो गई और बहादुरशाह शासक बना। छत्रसाल के बहादुर शाह से अच्छे संबंध रहे।

छत्रसाल के शासनकाल में ही मराठों का प्रभाव बुन्देलखण्ड पर पड़ने लगा था सन् 1731 में छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् उनका राज्य हिरदेशाह जगतराय और पेशवा बाजीराव में बंट गया। पेशवा को दत्रसाल ने धर्मपुत्र माना था। पेशवा को बुन्देलखण्ड के कालपी, हटा, हृदयनगर, जालौन, गुरसराय, झाँसी, गुना, गढ़ाकोटा, और सागर के तथा अन्य छोटी छोटी जागीरें मिली इस तरह बुन्देलखण्ड में मराठा शक्ति का उदय हुआ।

मराठा शासकों में बाजीराव पेशवा के पश्चात् बाजीराव पेशवा (नाना साहब) गोविन्द राव पंत का प्रभाव पड़ा। अहमदशाह, अबदाली और मराठों के बीच हुए युद्ध में गोविन्द राव पंत की मृत्यु हो गई। उनके पश्चात् वाला जी गोविन्द और गंगाधर गोविन्द ने बुन्देलखण्ड का शासन सम्भाला किन्तु उन्हें सफलता न मिली। मराठा शक्ति का भी क्रमशः ह्रास होने लगा।

इस बीच अंग्रेजों ने मुगल सत्ता के अपकर्ष, मराठों और बुन्देलों की कमजोर स्थिति को देखते हुए संवत् 1885 में ''कालपी'' पर अपना अधिकार कर लिया। संवत् 1839 में कालपी पर पुनः ''मराठों का अधिकार हो गया। गौड़ शासक भी अपना अस्तित्व बनाये हुये थे। बालाजी गोविन्द ने रधुनाथ राव (अप्पा साहब) को सागर में नियुक्त किया। गौड़ शासकों ने अपने हारे हुए प्रदेशों को पुनः जीता।

इन युद्धों में मोरोपन्त और रधुनाथ राव की वीरता उल्लेखनीय थी।मोरो पन्त की मृत्यु (संवत् 1884) के पश्चात् उनके पुत्र विश्वासराव सागर सूबे का कार्य देखने लगे। इसी समय होल्करों ने सागर पर अपना अधिकार कर लिया मोरोपन्त की मृत्यु (संवत् 1884) के पश्चात् उनके पुत्र विश्वासराव सागर सूबे का कार्य देखने लगे। इसी समय होल्करों ने सागर पर अपना अधिकार कर लिया। रधुनाथ राव ने नागपुर के भौसलों की सहायता से होल्करों को पराजित किया। रधुनाथ राव के समय में ही संवत् 1824ई. में प्रथ्वीसिंह के वंशज मर्दनसिंह शाहगढ और गढ़कोटा के राजा बने। इन्होंने मराठों को दो बार हराया।

पेशवा के वंशज हिम्मत बहादुर और अली बहादुर के नाम उल्लेखनीय है। ''हिम्मत बहादुर की सहायता से ही अंग्रेजों ने बुन्देलखण्ड पर कब्जा किया। मराठों और अंग्रेजों की कई बार लडाई हुई। वि.सं. 1875 तक बुन्देलखण्ड का समस्त प्रदेश अंग्रेजों के शासन में आ गया।

अंग्रेजों ने वर्षो इस भू–भाग पर अपना अधिकार कायम रखा। संवत् 1905 में लार्ड डलहौजी ब्रिटिश राज्य के गर्वनर बने। इसी समय अंग्रेजों ने अपनी कूटनीतिक चालों व शक्ति से क्रमशः पंजाब, सतारा, को अपने राज्य मे मिला लिया। रानी लक्ष्मीबाई सागर के कमिश्नर की ओर से झॉसी का राज्य प्रबन्ध देखती थी।

बुन्देलखण्ड का 1857 का सैनिक विद्रोह भारत के स्वतंत्रय आन्दोलन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ''अंग्रेज सरकार के विरूद्ध सेना में खबर फैल गई कि वह गाय और सुअर की चर्वे लगे कारतूस चलवाती है, इसी से सेना में विद्रोह फैल गया। पहले बरहमपुर की सेना ने विद्रोह किया, फिर मेरठ की सेना ने इसके बाद दिल्ली मुर्शिदाबाद, लखनऊ, इलाहाबाद, काशी, कानपुर, झॉसी में विद्रोह हुआ।

बुन्देलखण्ड में भी इस सैनिक विद्रो ने बहुत जोर पकड़ा। ''सागर की 42 नं. पल्टन बागी हो गई। बानपुर के राजा मर्दनसिंह ने अपनी सेना लेकर खुरई तहसील और नरयावली के परगने पर अधिकार कर लिया। खुरई में अंग्रेजों की तरफ से अहमद बख्श तहसीलदार था। यह भी मर्दन सिंह से मिल गया। मर्दन सिंह ने ललितपुर चंदेरी पर कब्जा किया।

शाहगढ़ के राजा बख्तबली ने भी विद्रोह कर दिया। राहतगढ पर आभापानी गढ़ी (भोपाल) के नबाव ने अधिकार कर लिया। सर ह्यूरोज सागर के विद्रोह को दबाने के लिये ''मऊ'' से सेना लेकर आया। मालथौन में मर्दन सिंह की सेना ने उसे रोक लिया। ह्यूरोज ने सागर की 39नं. की पल्टन की सहायता से मर्दन सिंह को हरा दिया और बालवेट पुनः अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। झॉसी आर कालपी में यद्यपि उन्हें कठिनाइयॉ आई।

रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों का जमकर मुकावला किया, झॉसी से रानी कालपी पहुंची, वहॅा बख्तवली मर्दन सिंह की मदद से पुनः अंग्रेजों से टक्कर ले रहे थे। काल्पी

से रानी ग्वालियर पहुंची, ग्वालियर के सिंधिया को हराकर रानी ने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। सर ह्यूरोज ने ग्वालियर पर भी आक्रमण कर दिया–''तात्या और रानी ने भीषण युद्ध किया इसी युद्ध में रानी की मृत्यु हो गई। तात्या को बंदी बनाया गया और बाद में फॉसी दी गई। राजविद्रोह शान्त हो जाने पर बुन्देलखण्ड के सारे प्रदेश अंग्रेजी राज्य में आ गये। वास्तव में 1859 का विद्रोह पिछली शताब्दी के राजनैतिक आर्थिक और धार्मिक कृत्यों की प्रक्रिया था। जिसमें ईस्ट इंडिया कंपनी के सारे कारनामें प्रतिच्छादित है।

सन् 1857 की क्रांति के पश्चात प्रथम विश्वयुद्ध के समय स्वतंत्रता संग्राम में बुन्देलखण्ड पुनः सक्रिय हुआ था। झॅासी के परमानन्द जी, कत्तार सिंह, विष्णु गणेश पिंगले दतिया के दीवान नाहरसिंह, खानिया धाना के श्रीमान्, खलक सिंह जू देव, सागर के वासुदेव राव सूबेदार, आदि व्यक्तियों ने अंग्रेजी शासकों को एक बार फिर कपित कर दिया।

वस्तुतः बुन्देलखण्ड ने भारत के राजनैतिक इतिहास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह किया है। स्वतंत्रता की जिस भावना का सूत्रपात वीरसिंह देव ने किया था, मधुकर शाह और चम्पतराय ने उसे आगे बढाया, छत्रसाल ने उसमें शक्ति फूॅकी और स्फूर्ति बनाकर मर्दन सिंह, बख्तबली के द्वारा वह अनेक शहीदों को प्राप्त हुई। रानी लक्ष्मीबाई, तात्याटोपे आदि के उत्सर्ग उसे अमर बना गये। कालान्तर में वहीं बीसवीं शती के प्रारम्भिक दशकों में जन आन्दोलन का आधार बन गई।

¼l½ cqUnsy[k.M dk ukedj.k %&

''बुन्देलखण्ड'' भू–भाग प्रागैतिहासिक काल में भी अपने अस्तित्व में था और आज भी है। यह वह भू–भाग है जो प्रमुख रूप से बुन्देले राजपूतों की निवासभूमि अथवा उनके द्वारा शासित भूमि रहा है। ऐतिहासिक विवरण से ज्ञात होता है कि 'बुन्देल' अथवा बुन्देलाशब्द सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, अग्निवंशी, चेदि, चौहान, गहरवार आदि वर्ग विशेष के क्षत्रियों का द्योतक नहीं है। बुन्देलखण्ड में बसने के कारण वहॅा का क्षत्रिय वर्ग विशेष 'बुन्देला' नहीं कहलाया, इसके विपरीत बुन्देलों की निवासभूमि होने के कारण यह भू–भाग 'बुन्देलखण्ड' कहलाया।

बुन्देलखण्ड नामकरण के संबंध में अनेक मान्यताएॅ है। प्रथम मान्यता के अनुसार गिरिराज विन्ध्य की उपव्यका में स्थित होने के कारण यह भू–भाग बुन्देलखण्ड कहलाता है। इस भू–भाग का नाम 'बुन्देलखण्ड' मानने वाले 'विन्ध्य' शब्द का निर्माण मानकर कालांतर में 'बुन्देखण्ड' का नाम मानते है।

द्वितीय मान्यता के अनुसार बुन्देले इस भूभाग के भूल निवासी नहीं है। यहॉ आकर बसने के पश्चात् ही बुन्देले कहलाये। जनश्रुति है कि गहरवार क्षत्रिय महाराज हेमकरन, काशी का राज्य छिन जाने पर इस भूभाग में आये तथा पुनःश्च राज्य राज्य प्राप्ति हेतु उन्होंने विन्ध्यवासिनी देवी की आराधना की। देवी को अपना सिर समर्पित करने के लिए जैसे ही अपनी तलवार उठाी देवी ने उनका हाथ पकड लिया, किन्तु उनके मस्तक पर तलवार की खरौंच लग ही गई और रक्त की कुछ बूॅदे भूमि देवी के सामने गिर पड़ी। अपने रक्त की बूॅद देवी को समर्पित करने वाले हेमकरन महाराज की संतान बुन्देले कहलाये तथा इनकी निवास भूमि 'बुन्देलखण्ड' नाम से संबोधित होने लगी।

सम्भवतः विन्ध्य से विन्हयेन शब्द की निष्पत्ति हुई। कालान्तर में विन्ध्येले से बुन्देले शब्द बना और इन बुन्देलों का इस भू–भाग में शासन स्थापित होने के पश्चात ही उसे बुन्देलखण्ड कहा जाने लगा। 11वीं शती पूर्ण के महाराज हेमकरण की 10वीं पीढ़ी में 16वीं शती के लगभग मध्यकाल में महाराज रूद्रप्रताप हुये, जिन्होने सर्वप्रथम चन्देलों के अधिकार से इस भूखण्ड का कुछ भाग छीनकर अपना राज्य स्थापित किया। इतिहासकारों ने इनके शासन का आरम्भ सन् 1553ई0 (सं. 1610वि.) माना है। महाराज रूद्रप्रताप ही बुन्देल राज्य के प्रथम शासक थे।

इनके पश्चात् उनके पुत्र महाराज भारतीचन्द्र ने अपने राज्य का विस्तार उत्तर में यमुना नदी के तट तक तथा दक्षिण पूर्व में कालिंजर और महोबा तक किया। इसी काल से इस भूभाग को बुन्देलखण्ड कहा जाने लगा प्रतीत होता है। महाराज छत्रसाल बुन्देला इसी राजवंश के उत्तराधिकारी हुए। इससे शत प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड का नाम चार सौ वर्षो से अधिक प्राचीन नहीं है।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में बुन्देलखण्ड का 'जेजाक भुक्ति' के रूप में उल्लेख किया गया है। इतिहासकारों ने राजा जेज्जाक (जयशक्ति) को प्रातापशाली

शासक कहकर उसका राज्य यमुना से नर्मदा तक विस्तृत बतलाया है। इसी राजा के नाम पर यह यमुना से नर्मदा तक का भाग 'जीजक' अथवा जेजक भूमि' कहलाता था। स्व0 श्रीकृष्ण बल्देव वर्मा का तर्क है कि ''बैदिक कालीन यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड का जहॉ सर्वप्रथम अभ्युदय होने के कारण यह प्रदेश 'यजुर्होति' कहा गया था, जिसका अपभ्रष्ट रूप 'जैज–भुक्ति' है।' प्रथ्वीराज चौहान के मदनपुर के शिलालेख से प्रकट होता है कि 12वीं शताब्दी तक यह देश 'जेजाकमुक्ति' ही कहलाता था।

'बुन्देलखण्ड' का नाम 'दशार्ण देश' भी बतलाया जाता है। यह नाम 'जेजाकमुक्ति' से पूर्व का होना चाहिए। महाभाष्य के टीकाकार ने नदी विशेष तथा देश विशेष का 'दशार्ण' लिखा है। बुन्देलखण्ड दस नदियों का देश है। चम्बल,पहूज,कालीसिंधु,और कुॅवारी नदियों का संगम यमुना में होता है। इस सीान को पंच–नद भी कहते है। शेष पॉच नदियॉ बेलवती (बेतवा), कन्दाकिनी, केन, तमसा और धसान है।

इस प्रदेश को बुन्देलखण्ड कहे जाने का कारण यहॉ की भौगोलिक स्थिति ही प्रतीत होती है। इस प्रदेश में विन्ध्य पर्वत की श्रेणियॉ है और इस कारण यह विन्ध्येलखण्ड अथवा विन्ध्येलखण्ड कहलाया। कालांतर में विन्ध्येलखण्ड का बुन्देलखण्ड नाम प्रसिद्ध हुआ।

भारत वर्ष के इतिहास में बुन्देलों का अपना स्थान है। बुन्देलों में कितने ही प्रतापी राजा हुये जिन्होंने मुगल शासकों से डटकर लोहा लिया और अपना कीर्तिमान स्थापित किया। बुन्देलों के शासन होने के कारण ही सारे प्रदेश का नाम बुन्देलखण्ड पड़ गया।

वैदिक साहित्य में इस प्रदेश का नाम यजुर्होति उपलब्ध है। यही इस प्रदेश का प्राचीनतम नाम माना जाता है। कहा जाता है कि यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड का आविर्भाव सबसे पहले इसी प्रदेश में हुआ और इसी कारण से इसका नाम ययुर्होति पड़ा और फिर अपभ्रंश होते होते अयुर्दोति शब्द बिगडकर जीजशुक्ति और जेजाकमुक्ति बन गया। कुछ साहित्यकारो का मानना है कि, बुन्देला शासक जयशक्ति के नाम से इस प्रदेश का नाम जेजाकभुक्ति पड़ा। इसी जेजाकमुक्ति शब्द का अपभ्रंश रूप जुझौति या जुझाखंड हो गया। महाभारत काल में उस प्रदेश को दशार्ण कहा जाता

था। दशार्ण इस प्रदेश में बहने वाली नदी का नाम भी है जिसे आज धसान कहते है। 'दशार्ण' का शाब्दिक अर्थ है दस जल 1 अण शब्द का अर्थ है जल। कुछ विद्वान इस प्रदेश में बहने वाली दस प्रमुख नदियों के कारण इस प्रदेश का नाम दशार्ण मानते है।

इस प्रदेश के नाम चेदि' राजा चिदि के नाम से पड़ा। राजा चिदि राजा विदर्भ के पोते थे। ये यदुवंशी थे। महाभारत काल में चेदि प्रदेश का राजा शिशुपाल था। कुछ साहित्यकारों का अनुमान है कि इस चेदि शब्द से ही चन्देल शब्द की उत्पत्ति हुई। चेदि लोग ही चन्देल कहे जाने लगे। कतिपय मान्यताओं के अनुसार चंद्रब्रह्म के वंशज चंदेले कहलाये। परन्तु इस प्रदेश का नाम बुन्देलखण्ड कभी नहीं पड़ा। इस प्रदेश पर, चेदि, मौर्य, शुंग, वाकाटक, गुप्त, कल्चुरि, चन्देल, अफगान, मुगल, गौड़, इत्यादि विभिन्न राजाओं ने राज्य किया। अंत में बुन्देले आये और उन्होंने खंगार राज्य छीन कर अपना आधिपत्य जमाया। बुन्देलों के नाम पर इस प्रदेश का नाम बुन्देलखण्ड पड़ा, जो आज भी प्रचलित है।

इतिहास वेत्ताओं ने बुन्देलखण्ड को भारतवर्ष का हृदय कहा है तो भूगोल शास्त्रियों ने विन्ध्यांचल को हिमालय से भी पुरातन बताया है। विन्ध्यांचल की तलहटी में एक विशाल बीहड़ वन है जो विन्ध्य श्रेणियों से घिरा है, जहां उच्च तुग श्रृंगों से सहस्त्रों झरने और प्रपात प्रवाहित होते रहते है। इस स्थान को विन्ध्य क्षेत्र कहते है। पौराणिक कथाओं में विन्ध्यक्षेत्र को अगस्त, अंगिरा, विश्वामित्र आदि ़षियों की तपोभूमि बताया गया है। बुन्देलखण्ड को जिस प्रकार तपोभूमि की मान्यता प्राप्त है उसी प्रकार वीर भूमि, कवि भूमि और प्राकृतिक छटा से सज्जित सौजन्य भूमि की सहज ख्याति मिली है। इस छंद में बुन्देलखण्ड के सर्वतोमुखी वैभव का दर्शन कराना चाहिये। ''विन्ध्यांचल अंचल क्षमा की क्षमता को लिये, विश्व को लिखा रहा है मानवी परंपरा मान्य मान्यता का विभुता का वर वीरता का, पड़ा रहा पाठ, छत्रसाल रण बांकुरा। सुर–बन, लब्जित हो करता सराहना है, कानन यहॅा का देख रेख के हरा–भरा। बेतवा, धसान, सिन्ध, केन करती कलोल, बन्दौ 'मित्र' बिमल बुन्देल की वसुंधरा।

बुन्देलखण्ड का प्राचीनतम नाम चेदि था। बाद में उसकी एक संज्ञा जेजाक भुक्ति हुई। महाजनपद–युग में चेदि की गणना भारत के सोलह बडे राज्यों में की जाती थी। पौराणिक बौद्ध एवं जैन साहित्य से यह ज्ञात होता है कि चेदि जनपद की

राजधानी का नाम ''शुक्तिभतीपुर'' था। यह नगर शुक्तिमनी नदी के तट पर स्थित था। अब यह नदी केन कहलाती ह। आगे चलकर चेदि का परवर्ती नाम बुन्देलखण्ड प्रसिद्ध हुआ।

बुन्देलखण्ड एक भौगोलिक अभिधान है जिससे बुन्देल नामक क्षेत्र का द्योतन होता है। भारत के इस प्राचीन भू–भाग ने यह नाम उस समय पाया जब चौदहवीं सतहवीं शताब्दी ई. में बुन्देल राजपूतों ने अपनी चरम शौर्य शक्ति के कारण अपनी पृथक पहचान बनायी और उनके द्वारा शासित क्षेत्र बुन्देलखण्ड कहलाया। इसके पूर्व यह क्षेत्र चेदि–जेजाकशुक्ति, जुझौति, विन्ध्येलखण्ड एवं विन्ध्यप्रदेश आदि विविध नामों से विभिन्न कालों में अपनी प्रभुसत्ता संजोए रहा।

¼n½ Hkk"kk;h i"BHkfe %&

मध्यभारत के विन्ध्यांटबी क्षेत्र विन्छोल खण्ड अथवा बुन्देलखण्ड प्राचीनतम क्षेत्रों में है। जिसमें झॅासी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, महोबा, बांदा, चित्रकूटधाम (साहू जी महाराज नगर,), टीकमगढ, छतरपुर, पन्ना का एक भाग, सागर, दमोह, छतरपुर, दतिया, भिण्ड, ग्वालियर, मुरैना, शिवपुरी, विदिशा और जबलपुर के अतिरिक्त गुना, सिवनी, तथा छिंदवाड़ा, बालाघाट, और बैतूल का विशाल भूभाग आता है जिसमें लगभग 2 करोड़ लोग निवास करते है। और इन्हें क्षेत्र के नामानुरूप विन्हयेलखण्डी या बुन्देलखण्डी कहते है। बुन्देलखण्डी का रूपान्तरण बाद में बुन्देला हुआ जिनकी भाषा बुन्देली मानी गई।

बुन्देली भाषा भी इस भूखण्ड के प्राचीन स्वरूप के पुरातन भाषाओं में एक है। बुन्देली का उद्भव प्राकृत और प्राकृत अपभ्रंश से हुआ। ''संस्कृतात् प्राकृत श्रेष्ठ और ज्येष्ठा'' इसे प्राचीन भाषा की मान्यता प्रदान करते है। बुन्देली भाषा की यह धारणा 10वीं सदी में मिलने लगी थी किन्तु इसके आगे ऊबड़–खाबड़ क्षेत्रों में बहती जमुना, नर्मदा, चम्बल और टौंस के प्रवाह की भांति इसका विकास प्रारंभ में धीमा किन्तु बाद में तीब्र होता चला गया। जगनिक को बुन्देली का आदि कवि और उसके द्वारा रचित 'रासो' बुन्देली भाषा का प्रथम ग्रंथ बना।

बुन्देली के भाषा के सम्बंध और विकास के कार्य, बुन्देलीवार्ता गुरसराय बुन्देली हिन्दी शोध संस्थान झॅासी , चन्दनदास शोध संस्थान बांदा, बुन्देली विकास परिषद स्यावरी, बुन्देली भारती पृथ्वीपुर (म.प्र.) बुन्देलखण्ड अकादमी छतरपुर और सागर विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.), की ईसुरी पीठ, बुन्देली शोध संस्थान सेंवड़ा (म.प्र.) आदि ने किया। भोपाल के अखिल भारतीय बुन्देलखण्ड साहित्य एवं संस्कृति परिषद आदि संस्थानों का बुन्देली भाषा के विकास में बहुत योगदान है।

''पांचकोस पै बदले पानी। बीस कोस में बानी।''

की उक्ति के बावजूद साहित्य साधकों ने अथक परिश्रम कर बुन्देली की समृद्धि में अपना 'होम' दान किया। इतने विस्तृत क्षेत्र और बदलती परिस्थितियों में जहां बुन्देली के विभिन्न रूप जैसे शिष्ट हवेली, खटोला, बनफरी, लुधयांती, चौरासी, ग्वालियरी, भदवरी, तंवरी, सिकखारी, पबांरी, जबलपुरी और डॅगाई की पहिचान रहते हुए परिनिष्ट बुन्देली में अगाध साहित्य की रचना की इसे भाषा का स्थान दिलाया।

इसके पूर्व संतकवि तुलसीदास की कवितावली में बुन्देली भाषा का दृगदर्शन होता है। इसमें बुन्देली शब्दों, बारे, बुढे, कथरी, रूख आदि और क्रियायें तथा उबारना और छोरना मुहावरों का समावेश हुआ है इस प्रकार 9वीं सदी के शैशव से लेकर बुन्देली राजमहलों से निकल कर जनपथ पर आ खडी हुई।

भारत की अधिकांश आर्य भाषाओं तथा उनकी बोलियों के नाम उनके क्षेत्र पर आधारित है यथा पंजाब की पंजाबी, राजस्थान की राजस्थानी, गुजरात की गुजराती, बंगाल की बंगाली, आसाम की आसामी, उड़ीसा की उड़िया, बिहार की बिहारी। इसी प्रकार अवध की अवधी, ब्रज की ब्रज, कन्नौज की कन्नौजी, बधेलखण्ड की बधेली, मालवा की मालवी निमाड़ की निमाड़ी इसी आधार पर बुन्देलखण्ड की लोकभाषा बुन्देलखण्डी अथवा बुनदेली कहलाती है।

Mk- mn;ukjk;.k frokjh d vu|lkj %& ''बुन्देली अथवा बुन्देलखण्डी वस्तुतः बुन्देलखण्ड की भाषा है। बुन्देल राजपूतों की प्रधानता के कारण ही इस प्रदेश का नाम बुन्देलखण्ड तथा इस भाषा का नाम बुन्देली पड़ा।''

Mk- HkkykukFk frokjh %& के अभिमत से ''बुन्देले राजपूतों के कारण मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की सीमा के झॅासी, छतरपुर, सागर आदि तथा आसपास के भागों को बुन्देलखण्ड कहते है। वहीं की बोली बुन्देली या बुन्देलखण्डी है।''

''बुन्देली'' पश्चिमी हिन्दी की एक महत्वपूर्ण बोली है। बुन्देली लोकभाषा बुन्देलखण्ड में बोली जाती है किन्तु यह संपूर्ण बुन्देलखण्ड में प्रचलित नहीं है। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार एक तो यह बॉदा जिले की बोली नहीं है। दूसरे चम्बल नहीं ग्वालियर राज्य की उत्तरी और पश्चिमी सीमा का निर्माण करती है। किन्तु बुन्देली उत्तर में चम्बल तक ही सीमित नहीं है। यह इस नदी की पार कर आगरा मैनपुरी और इटावा जिले की दक्षिणी भाग में भी बोली जाती है। पश्चिम में यह चम्बल तक भी बोली जाती है।ग्वालियर राज्य के पशचिमी भाग में ब्रज और राजस्थान की कुछ बोलियों से मिश्रित बोली जाती है। इसी प्रकार दक्षिण में यह नर्मदा को पार कर होशंगाबाद और नरसिंहपुर जिले में ही नहीं वरन् सिवनी जिले में भी बोली जाती है। यह बालाघाट के लोधियों द्वारा भी बोली जाती ह। इस प्रकार यह 19 हजार वर्ग मीट में बसे लोगों द्वारा बोली जाने वाली लोकभाषा है।''

Mk- HkkykukFk frokjh d vuqlkj %& ''बुन्देली शुद्ध रूप में झॅासी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, (टीकमगढ़), सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा नागपुर में प्रचलित है''। डॉ. हरदेव बाहरी ने बुन्देली का क्षेत्र इस प्रकार वर्णित किया है

''यमुना उत्तर और नर्मदा दक्षिण अंचल।
पूर्व ओर है टोंस, पश्चिमी चल में चम्बल।।

किन्तु वर्तमान समय में यह क्षेत्र इससे कुछ अधिक बढ़ा, इसके अंर्तगत उत्तर प्रदेश में बॅादा का पश्चिमी भाग, उरई, हमीरपुर, जालौन और झॅासी के पूरे पूरे जिले एवं मध्यप्रदेश में ग्वालियर का पूर्वी भाग, भोपाल का थोडा सा हिस्सा ओरछा, पन्ना, दतिया, सागर, टीकमगढ, नरसिंहपुर, सिवनी, छिंदवाडा, होशंगाबाद और बालाघाट के जिले आते है।''

Mk- /khjsUn oekZ – शुद्ध बुन्देली क्षेत्र के अन्तर्गत झॅासी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद और मिश्रित बुन्देली का क्षेत्र दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट, तथा छिन्दवाडा का कुछ भाग मानते है।

Mk- ,e-ih- tk;lcky & ने शुद्ध बुन्देली के क्षेत्र बुन्देली भाषी जिले टीकमगढ, सागर, झॅासी, जालौन जिले का अधिकांश भाग, हमीरपुर, ग्वालियर जिले के चन्देरी एवं मुंगावली क्षेत्र, भोपाल, सागर, भेलसा(विदिशा) जिले का आधा पश्चिमी भाग एवं दतिया की सीमा के भाग बतलाये है। उनके शेष बुन्देली भाषी जिले छतरपुर, पन्ना, दमोह, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, सिवनी, बालाघाट, छिंदवाडा, तथा दुर्ग के कुछ भाग है। इन्होंने बांदा जिले को भी बुन्देली भाषी क्षेत्र के अन्तर्गत स्थान दिया है।

Mk- jkes'oj izlkn vxzoky & ने बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत आने वाले जिलों – जालौन, हमीरपुर, झॅासी, बॅादा, टीकमगढ, छतरपुर, पन्ना, दमोह, सागर, नरसिंहपुर, भिण्ड, दतिया, ग्वालियर, शिवपुरी, मुरैना, गुना, विदिशा, रायसेन, और होशंगाबाद को सम्मिलित करने के पश्चात उल्लेखित किया कि ''भाषायी व्यापकता की दृष्टि से उक्त सीमा में कुछ परिवर्तन आवश्यक होंगे, जैसे नर्मदा के दक्षिण में स्थित छिंदवाड़ा, सिवनी तथा बैतूल जिले मराठी मिश्रित होते हुये भी बुन्देली भाषा भाषी ही है।

झॅासी, जालौन, हमीरपुर, और बॅादा को बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत माना गया है। उनमें से बॅादा जिला बुन्देली भाषी नहीं है। वहॅा अवधी का एक रूप बोला जाता है। चम्बल नदी ग्वालियर की उत्तरी और पश्चिमी सीमा पर बहती है जिसके साथ बुन्देलखण्ड की सीमा समाप्त हो जाती है किन्तु बुन्देली इस सीमा को बांधकर, आगरा, मैनपुरी और इटावा जिले के दक्षिणी भागों में बोली जाती है।

बुन्देली निम्नलिखित जिलों के लगभग एक करोड़ लोगों की मातृभाषा है।

mRrj izns'k dk ikp ftys & झॅासी, ललितपुर, हमीरपुर, जालौन तथा बॅादा।

e/;izns'k dk ckbl ftys & टीकमगढ, छतरपुर, पन्ना, सागर, दमोह, दतिया, ग्वालियर, भिण्ड, मुरैना, गुना, शिवपुरी, विदिशा, रायसेन, होशंगाबाद, जबलपुर, नरसिंहपुर, मण्डला, शिवनी, छिंदवाडा, बालाधाट तथा बैतूल, सतना की नागौद तहसील तथा सीहोर का पूर्वी भाग इनमें से सीमान्त जिलों का भाषा पर उनसे लगने

वाले क्षेत्रों की भाषा का प्रभाव है। किन्तु भषा वर्षो के निर्णायक तत्वों ध्वनि, अर्थ, वाक्य रचना, शब्द समूह तथा रूप के आधार पर उपर्युक्त सभी जिलों की भाषा बुन्देली ही है।

राजनैतिक एक सूत्रता के अभाव के कारण बुन्देली के बहुत से क्षेत्रों के लोग स्वयं यह स्वीकार नहीं करते कि उनकी मात्रभाषा को स्थानीय नाम भी दे रखे है। उदाहरणार्थ–भिण्ड, मुरैना के लोगों ने तवरधारी तथा भदवरी, बॉदा और हमीरपुर जिलों के कुछ अंचलोंके लोगों ने बनाफरी, ग्वालियर, शिवपुरी और गुना की भाषा चौरासी कहलाने लगी। ग्रियर्सन महोदय ने भी बुन्देली क्षेत्र में बसने वाली जातियों अथवा स्थानों के नाम पर बुन्देली की निम्नलिखित उपबोलियों या क्षेत्रीय रूपों की चर्चा की है जैसे– लुधांती, पॅवारी, खटोला, बनाफरी, कुन्द्री, निभट्टा, भदौरी तथा बुन्देली क्षेत्र के दक्षिण की मिश्रित बोलियां लोधी, कोष्ठी, कुम्भारी आदि किन्तु बुन्देली नाम भी उन्हीं को दिया हुआ है।

ukjrk uR;

बुन्देलखण्ड में नृत्य के बिना किसी उत्सव या पर्व की कल्पना अधूरी होती है। बुन्देलखंड में कई पर्व मनाये जाते है। ग्रीष्म के उपरांत वर्षा ऋतु में सावित्री वृत, अषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा, सावन तीज, नाग पंचमी, भुंजरिया, रक्षाबंधन, कृष्णाष्टमी, हरतालिका व्रत, ऋषि पंचमी, संतान सप्तमी, अन्नत चतुर्दषी, महालक्ष्मी, प्रमुख त्यौहार है। वर्षा ऋतु के अंत में मामुलिया (आष्विन कृष्ण पक्ष में) नवरात्रि, सुअटा (नौरता) दषहरा आदि के साथ बंसत ऋतु समाप्त हो जाती है। इसमें भुंजरियां और मामुलिया, सुअटा विषेष प्रसद्धि हैं।

बुन्देलखंड में किषोरी बालिकांए कुवांर के महिने में नवरात्रि के समय नौरता नामक एक अत्यंत सरल तथा धार्मिक भावनापूर्ण खेल खेलती हैं। नौरता शब्द नौरात्रि का बोधक है तथा नौरता नौरात्रि तक चलने वाला नृत्य है। बुन्देलखंड के अधिकांष ग्राम और नगरों में सुअटा खेलने की परंपरा काफी समय से चली आ रही है। आज भी गांव तथा नगरों के प्रत्येक मुहल्लों में ऐसे चबूतरे नजर आते हैं जहां सुअटा खेलने के लिए एक विषेष जगह बनाई जाती है। बुन्देलखंड के ग्राम एवं जनपदीय अंचल में कुंवार का महिना विषेष मौज मस्ती

और हर्ष उल्लास का माना गया है। इस समय मामुलिया, सुआटा और टेसू ऐसे प्रिय खेल हैं जिन्हें लड़कियाँ बड़े उत्साह से खेलती हैं। अविवाहित लड़कियों के मन में इन लोक परपंराओं के प्रति अटूट श्रद्धा और सम्मान पाया जाता है। यदि सम्पूर्ण रूप से देखा जाये तो कुंवार के पूरे महिने ही लड़कियां इस अनोखे खेल में व्यस्त रहती हैं।

सुअटा या नौरता कुमारी कन्याओं द्वार खेला जाने वाला एक अनुष्ठान परक खेल है, जो कि अष्विन– शुक्ल प्रतिपदा से नौ दिन तक चलता रहता है। इस आख्यानक खेल का सबसे महत्वपूर्ण पात्र सुअटा है। इसलिए उसका नाम सुअटा पड़ा है। नव रात्रि में खेले जाने के कारण और शक्ति से जुड़े होने से उसे नौरता कहा गया है। पहले अष्विन शुक्ल पूर्णिमा को ^^Ldneg** नामक उत्सव मनाया जाता था जिसमें स्कंद की पूजा होती थी। फिर कुंवारी कन्याओं द्वारा गौरी की पूजा होनी लगी। और दोनों उत्सवों को मिलाकर एक कर दिया गया । जिसे कोई सुअटा और नौरता कहने लगे। अष्विन माह की शुल्क पक्ष की प्रतिपदा से प्रारंभ होकर दषहरा तक जब शक्ति आराधना का नवरात्रि पर्व मनाया जाता है उन्हीं दिनों बालिकाओं का रंगोली पर्व नौरता गांव गांव में आनंद की वर्षा करता है। कुंवारी कन्याओं द्वारा मनाया जाने वाला यह रंगबिरंगा कार्यक्रम प्रतिपदा से नवमी तक नौ रातों के अनुसार नौरता कहलाता है। रंगो में कलात्मक अभिव्यक्ति का यह कार्यक्रम इन दिनों प्रतिदिन ब्रम्ह मुहूर्त में प्रारंभ होकर सूर्य की प्रथम किरण के उदय के पूर्व से ही प्रारंभ होता है। बालिकायें इन दिनों विभिन्न रंगों से चबूतरों पर आकर्षक कलाकृतियां बनाती है। नौरता बुन्देली संस्कृति का आधार स्तंभ है। जिसके माध्यम से बालिकाओं में सांस्कृतिक चेतना का प्रसार होता है।

ukSjrk vuq"Bku dh rS;kjh

क्वॉर माह में नवरात्रि प्रारंभ होने के कई दिन पहिले से लड़कियां नौरता की तैयारी प्रारंभ कर देती हैं। सुअटा खेलने के लिए पास–पड़ौस की कन्याएं सूर्योदय से पूर्व किसी चबूतरे पर एकत्रित हो जाती हैं। कुछ मुहल्लों में सुअटा खेलने की एक जगह निष्चित बन जाती है। कन्याऐं मिटटी से बनायी गयी ''सुअटा'' की मूर्ति की पूजा करती हैं। चौक पूरे एक दूब हाथ में ले कर, उस पर

दूध खेलने की तयारियों काफी पहले से शुरू हो जाती है। लड़कियां, चीलबटा, संगमरमर, दूधिया–पत्थर आदि भिन्न–भिन्न प्रकार के पत्थरों को पीसकर रंग–बिरंगे रंगों से स्वयं की तैयार करती हैं।

सूर्योदय से काफी पहले लड़कियां, अपनी–अपनी थालियों में रंगों को लेकर सुअटा खेलने के लिए इकट्ठी होती है।

दूसरे शब्दों में हम कहें तो किसी एक घर या बड़ी सी दहलान में लड़कियॉ नौरता का चौक बनाती हैं। एक मिटटी का चबूतरा बनाया जाता है। जिसमें नीचे हाथ–पांच जोड़कर दैत्य भूत का रूप दिया जाता है। फिर दिवार के सहारे चबूतरे के पीछे– पत्थर– मिट्टी से पर्वत के नीचे दो पकी परियां गाड़कर दुग्ध कुण्ड बनाये जाते हैं। जिसमें पूजन के समय दूध भर दिया जाता है। और उसमें दूबा डाल दी जाती है। पर्वत षिखर को रंग–बिरंगी पत्थरों तथा कई रंग की मिट्टी जैसे पीरोठा, गेरू आदि से सजाया जाता है। कुम्हड़े एवं तुरैया के फूलों से उसे और भी सजाया जाता है। नदी की रेत से मिलने वाली सफेद सीप तथा शंखियां एवं पत्थर के टुकड़ों को बीनकर उन्हें महीन पीसकर कटोरियों में रख लेते हैं। जिससे सफेद चमकीला चूर्ण तैयार हो जाता है। ईंट तथा लाल खपरे को पीसकर लाल रंग का चूर्ण तैयार कर लिया जाता है। इन दोनों चूर्णो से रोज नौरता के आसपास तथा ऐसे सामने वाली गली में बड़ी चतुराई और सुन्दरता के साथ चौक पूरे जाते है। फूल रखने के लिये बांस के छिट्न्ना बनवा लिये जाते है। नौरता की जगह लीप–पोतकर साफ की जाती है यह तैयारी नवरात्रि की प्रतिप्रदा के पहले कर ली जाती है।

अब प्रतिपदा से चौथ तक दैत्य पूजन किया जाता है और पंचमी से नवमी तक गौरी पूजन होती हैं। पंचमी के दिन मॉ गौरी की मिट्टी की प्रतिमा सíापित की जाती है। प्रतिमा के साथ ढोलिया व भदोई को भी स्थापित किया जाता है।

प्रतिपदा के दिन बहुत सुबह सब लड़कियॉ उठकर फूल तोड़कर छिट्न्ना सजाने में लग जाती हैं। छिट्न्ने में फूल बाहर की ओर और उनके डठंल भीतर की गोलकार रूप सजाये जाते है। ये छिट्न्ने नौरता के पास रखकर सब लड़कियां गीत गाती हुई नदी के स्नान करने जाती हैं, फिर पूजन प्रारंभ होने पर सब लड़कियां में जो लड़की बड़ी और चतुर होती है वह दुग्ध कुंड में से दूब भिगोंकर बारी–बारी से प्रत्येक लड़की का उस दूध छिड़कती हैं इसके पष्चात कॉय डाली जाती है गीत गाकर सब लड़कियां अपने अपने हाथ की कॉय– वह फूल लगी छड़ी नौरते पर चढ़ा देती है। पूजन के साथ साथ गीत में परिहास भी चलता जाता है। यह कॉय डालना देवी के ध्यान और आव्हन का रूप जान पड़ता है।

पंचमी से मॉ गौरा की पूजा प्रांरभ होती है मॉ की प्रतिमा की पूजन करके चढ़ावा श्रृगार चढ़ाया जाता है। और गीत गाये जाते है जिन्हें श्रृंगार गीत भी कहते हैं। पंचमी से अष्ठमी तक गौर पूजन का क्रम चलता रहता है।

कुँवार शुक्ल नवमी खेल का अंतिम दिवस होता है। नवमी के दिन नौरता से नदी तक के समस्त रास्तों पर चौक पूरा जाता है। नवमीं को पूजा के बाद सब लड़कियां गौर की प्रतिमा सिराने संध्या के समय नदी जाती है।

रात्रि होते ही झिंझिया फिराई जाती है। एक घड़े के ऊपरी भाग में चारों ओर कई छेद कर दिये जाते हैं। आधे घड़े तक राख भरकर उस पर तेल का दिया रख देते है। छेदों से उसका प्रकाष निकलता है। यह ''झिंझिया'' रखकर

लड़की उसे अपने सिर पर रखकर आगे–आगे चलती है। ''झिंझिया'' रखकर लड़की प्रत्येक घर जाती है। जहाँ पर उसे श्रृद्धा के अनुसार अनाज व चन्दा प्राप्त होता है। चंदा से प्राप्त राषि से अनाज का क्रय किया जाता है और दषवीं को रात्रि के समय सब लड़कियां उस अनाज से भोजन बनाती हैं और नौरता पर भोजन करती हैं। भोजन समाप्ति के साथ नौरता का खेल भी समाप्त हो जाता है। विवाह होने के पष्चात प्रत्येक लड़की को नौरता के उत्थान करना होता है जिसे नौरता उजाना भी कहते हैं।

vu"Bku ,o dk; Mkyu dk mnn’;

सुअटा के पूजन का उद्देष्य उन भयंकर ग्रहों से बचना है जो 16 वर्ष तक के बच्चों को सताते हैं। या तो वे उनका भक्षण करते हैं या अपहरण। गौरा पार्वती की पूजा और अनुष्ठान कुमारियों को श्रेष्ठ और मनचाहे वर पाने के लिए हैं। गौरा के साथ महादेव की मूर्ति रख लेना लोक के लिए सहज ही स्वाभाविक है। कॉय डालने का प्रमुख उद्देष्य बालिकाओं एवं उनके भाईयों की रक्षा करना है। कन्याओं की पाँच–पाँच और भाईयों की सात–सात मिट्टी की कॉय बना ली जाती हैं। फिर बालिकाऐं सुअटा को घेर कर खड़ी हो जाती हैं। सियानी कन्या दूब और तुरैया के फूल को दूध जल में डुबोकर गौरा पर छिड़कती हैं और फिर अपनी सहेलियों पर वे सब अपना नाम ले–लेकर अपनी अपनी सुअटा पर रखती जाती हैं। इसके साथ गीत भी चलते रहते हैं। सब भाईयों का नाम ले–लेकर कॉय डाली जाती है। इस प्रकार कॉय डालने का मूल्य उद्देष्य राक्षस के भय से अपनी एवं अपने भाईयों की रक्षा करना है।

इस प्रकार नौरता बालिका प्रधान नृत्य है जिसमें नौ दिन तक लड़कियाँ अपने उत्साह एवं खुषी की अभिव्यक्ति नाचकर व गाकर करती हैं। इस नृत्य में लड़कियाँ नौरता एवं टेसू के गीत गाती हैं तथा ताली बजाकर विभिन्न मुद्राओं में नृत्य करती हैं। नवमी के दिन ''झिंझिया'' के कारण संध्या के समय यह नृत्य बहुत ही आकर्षक बन पड़ता है। नौरता एक खेल नृत्य है जिसमें बालिकायें पूजन के साथ–साथ खेलती व नृत्य करती हैं। इसमें विभिन्न मनोरंजक गीत उनके नृत्य में सहायक होते हैं।

ykduR; uk`jrk e xk; tku okyk xhr %&

पूछत–पूछत आये हैं, नारे सुआ हो।।

कौन बाबुल जू के सुआ हो,
पौरन बैठे भैया पोरिया, नारे सुआ हो

खिड़ला बैठो कुथवार सुआ हो,
निकरो दुलैया रानी बाहरे, नारे सुआ हो

आई बन राट मोरे नाव सुआ हो,
कैसे के निकरे बिन्नू बाहरे, नारे सुआ हो

पौर के पौरया मोरे राज सुआ हो,
हिमांचल जू की कुबर लड़ाई हो, नारे सुआ हो।।

चंदा माने भैया सूरज माने भैया,
के भैया मोरे आहे लिखावन जे हे,

पढ़ावन जेहे लुआवन जेहे पैचावन
जे हे चंदा माने भैया सूरज माने मैया

नौरता के गॉव में राधा रानी आई है,
नौरता के गॉव में श्यामा रानी आई है।

आठ कटीले काटें, जे पॉच भइया पाड़े
छटाई बेन ईगुर सींगुर आओ

आओ अंगना कुकु खेले संगना
आठ कटीले कांटे रे पॉच भइया पाडे

सूरज मोरे बाड़े रे चंदा ऊगे बड़े भुनसारे,
अंगन ने होय बारो चंदा

सबघर होय लिपना पुतना
माई कहो मैं कर हो

बाबुल को कहो में कर हो
मोरे बाड़े चंदा ऊगे बड़े भुनसारे हो

आई गौर की चाई देखो माई देखो
का पैरे देखो, हाथ में कंगना देखा

कानों में बाली देखो, नाकन नथुनिया देखी
पॉव पैजनिया देखो

आई गौर की पाई देखो माई देखो हो

cqUnsyh lSjk

बुन्देलखण्ड में भुजरियां (कजरियां) श्रावण माह में बोई जाती हैं। इन्हें महिलाओं द्वारा अवसर विशेष पर शुभ मुहूर्त में मिट्टी लाकर उसे दोनों अथवा गुनुआं में रखा जाता है, फिर उसमें गेहूं बो दिये जाते हैं और ढ़ककर रखा जाता है। नित प्रति पानी दिया जाता है, पूजन किया जाता है। दीपक अगरबत्ती जलाई जाती है, होंम लगाया जाता है। भादों में कजरियों का विसर्जन पूजन के पश्चात् महिलाओं द्वारा किया जाता है। कजरियों के बारे में लोक मान्यता है कि ये जितनी अधिक लम्बीं तथा पीली होती हैं वर्ष की फसल उतनी अच्छी होती है। कजलियों को विसर्जन के समय खोंट लिया जाता है। उसे सबसे पहले देवी–देवताओं को चढ़ाया जाता है फिर बड़े–बुजुर्गों को दिया, लिया जाता है।

कजरियों को एक–दूसरे के देने के पीछे मान्यता है कि वर्ष भर की भूलचूक की क्षमा याचना, बैर भाव आदि को भुलाकर हिल–मिलकर अन्न को बची में (साक्षी) रखकर होता है। इस समय जिसके घर दुख का यह त्यौहार होता है, उसके यहां अवश्य जाया जाता है, बैठने के लिये। गांव के बड़े घरों में पूरा गांव कजरियां देने जाता है। बड़े–बुजुर्गों को जब छोटों द्वारा कजलियां दी जाती हैं तो बड़े–बुजुर्ग कजरियों को हाथ में लेकर फिर दो–चार खजरियां देने वाले के दोनों कानों पर खोंस दते हैं, छोटा उनके चरण छूता है और बड़े आशीर्वाद देते हैं। यह परम्परा गांव–खेरों में आज भी प्रचलित है।

भुजरियां बोने से विसर्जन तक के दिनों में किसी बड़े मैदान में पुरुषों द्वारा सैरा गायन किया जाता है। इस सैरे की विशेषता यह होती है कि इसमें वाद्य यंत्रों के रूप में डंडे, ढोलक और मंजीरा होते हैं। पुरुष जो ढोलक मंजीरा बजाते हैं, वे बीच में होते हैं और उसके चारों ओर गोल घेरा बनाकर डंडे लिये लोग घूमते–गाते और

एक–दूसरे के डंडे पर डंडे की चोट करते चलते हैं। सैरा गाते समय ये एक–दूसरे के डंडे से डंडे को मारते आड़े–तिरछे होते बैठते, आगे–पीछे हो, उछलते तथा कलाबाजियां दिखाते घूमते हैं। सैरा की शुरूआत 'आरे–आरे हां रे' से होती है और 'हुक्क हुइया हा हा' सैरा गीत के अंत में लगाकर लोग डंडों के स्वर ढोलक मंजीरे के साथ मिलाते घूमते रहते हैं।

ग्रामीण अंचलों में बसा हुआ समाज आज भी अधिकांश अनपढ़ ही है, परन्तु उसमें आज भी अपने देश और धरती से गहरा लगाव है उसके प्रति आदर भाव है। कृषि के लिए उसके मन में श्रद्धा और स्नेह के साथ–साथ सम्मान का भाव है। उत्तम खेती ही ग्राम्य जीवन की जीविका है, अतएव उसके प्रति लगाव होना स्वाभाविक भी है।

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी लिखते हैं – बुन्देलखण्ड भारत का एक विशिष्ट भू–भाग है, जहां की अपनी विशिष्ट संस्कृति है, उल्लेखनीय गरिमा है, स्मरणीय इतिहास है, दर्शनीय प्राकृतिक सुषमा है, सराहनीय शौर्य है, प्रसंसनीय मर्दानगी है और है विलोभनीय नारी सौन्दर्य।

इस भू–भाग में एक साथ लोक और शिष्ट संस्कृति आज भी सुरभित है। डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही' के अनुसार मनुष्य सदा सुख की खोज में रहता है। वह कष्ट साध्य श्रम को गीत गाकर भुलाना चाहता है, इस संबंध में एक अंग्रेजी कवि ने कहा है 'आनंद जीवन की औषधि है। वह कष्टों का उपचार करता है। संघर्ष को परे रखता है, चिंता की रेखाओं को मिटाता है और कई गुना सुख प्रदान करता है।' ऐसी ही भावधारा में हमें सैरा लोकगीत में देखने–सुनने को मिलती है। सैरे के बारे में श्री गौरीशंकर द्विवेदी और विश्वसहाय चतुर्वेदी कहते हैं कि ये आषाढ़ मास से लेकर श्रावण माह तक गाये जाते हैं। व्योहार राजेन्द्र सिंह ने सैरे सामयिक गीतों के अंतर्गत लिये हैं। श्रीचंद जैन सैरे को नृत्य–गीत के अंतर्गत मानते हैं। डॉ. विनोद तिवारी ने सैरों को खेत की कविता कहते हुए उसे विषयगत् या अवसरगत् वर्गीकरण करते हुए वर्णन के अन्तर्गत लिया है। मेरी दृष्टि में सैरा लोकगीत श्रावण माह में जब से

कजलियां रखीं जाती हैं, तब से लेकर भादों में जिस दिन उनका विसर्जन होता है, उस दिन तक ही गाया जाने वाला लोकगीत है।

आल्हा में भुजरियों की लड़ाई के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड की आन–बान और शान का चित्रण हुआ है। इस अवसर पर गाये जाने वाले सैरा लोकगीत में जहां बुन्देली शौर्य गाथा गाथा की बानकी मिलती है वहीं प्राकृतिक सुषमा, बुन्देली जमीन की पहचान उसमें पैदा होने वाली फसलों की जानकारी मिलती है। नारी मन के कोमल भाव और उसकी टीस, कसक भी यत्र–तत्र बिखरी दिखाई पड़ती है। लोक का उत्सव और प्राकृतिक छटा का चित्रण बुन्देली सैरा की खासियत है। इतिहास बोध, भौगोलिक झलक, रहन–सहन, खान–पान, जीवन–दर्शन की विभिन्न अभिव्यक्तियां सैरा लोकगीत में खोजी जा सकती हैं। ऐसे लोकगीतों का संग्रह कर उस पर नये सिरे से शोध करने में सहायता मिलती है।

बुन्देली धरती प्रकृति सुरम्य स्थली है। यहां पर पावस ऋतु मनोहारी छटा बिखेरती है। अतः इस ऋतु में गाये जाने वाले लोकगीतों में सैरा अपनी विशिष्टता रखता है। वैसे सैरा लोकगीत नृत्य प्रधान और पुरुष वर्ग का लोकगीत है। इसमें पुरुष की भागीदारी रहती है। गीतों के अन्तर्गत अवश्य ही नारी भावनाएं उजागर होती हैं, जो पुरुष अपने कंठ से उजागर करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पावस ऋतु का प्रभाव हर मानव के जीवन पर अपनी अमिट छाप छोड़ता है जो सैरा के माध्यम से लोक में परिस्थितियों के साथ संयोग–वियोग के स्वाभाविक चित्रण में रूपान्तरित मिलता है।

संयोग श्रृंगार तथा मादकता जहां बुन्देली सैरा में अपनी छटा बिखेरते हुए मिलती है, वहीं पावस ऋतु की टीस, संत्रास और वियोगी हृदय की कसक अधिक गहरे आघात करती झलकती है। सैरा लोकगीत में रसमयता, कलात्मकता, वातावरण की जीवन्त दृष्टि तथा सामाजिक संस्कृति सभी कुछ समाहित है। बुन्देलखण्ड का अतीत और ऐतिहासिक गौरव गाथा सैरा में सुरक्षित है। इसमें बुन्देली परम्परा एवं रीति–रिवाजों के साथ करूणा का भाव तथा मार्मिकता अधिक परिलक्षित होती है। कुल

मिलाकर सैरा लोकगीत में सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन के जीवन्त चित्र स्पष्ट दिखते हैं जो लोक संस्कृति के मूल तत्वों के रक्षक कहे जाते हैं। पारिवारिक परिस्थितियों के जीते–जागते ये सैरे जहां आनंद का संचार हमारे भीतर करते हैं, वहीं ये जीवन जीने की प्रेरणा भी देते हैं। संघर्ष के क्षणों में कर्मठता प्रदान करते हैं। जूझने की शक्ति का संचार करते हैं और क्रियाशील बने रहने की जुगुप्षा जगाते हैं। सैरा में जीवनदायनी शक्ति है। नारी मन की कोमलांगी भावना है। पौरूषेय ओज है। बुन्देली लोक की रसिकता है। कुल मिलाकर प्रेम की उत्कंठा और वीरता की पराकाष्ठा का समन्वय सैरा लोकगीत में समाया हुआ है।

उदाहरण स्वरूप कुछ सैरे प्रस्तुत हैं। गोल घेरे में जब एक ओर से स्वर उठता है कि –

आरे आरे हां इतनी बेरा किये गाइये,
रे माता लइये कौन के नांव
अरे कौना फुलवा चढ़ाइए हो,
कीके दरसन की आस ....
हुक्क हुइया हा हा।

गीत के प्रारंभ होते ही धीरे–धीरे घेरे में घूमते लोग एक दूसरे के डंडे पर चोट लगाते हुए चलते हैं और गीत समूह स्वरों में होता है, उभरता है। गति तेज होत है, स्वर देने के लिए लोग दो भागों में बंट जाते हैं फिर आधे लोगों के बीच से एक व्यक्ति गा उठता है।

आरे आरे हां सदा तौ भुमानी दाहनी रे,
सनमुख रहत गनेस,
पांच देव रच्छा करें,
रे बिरमा बिस्नु महेश ....
हुक्क हुइया हा हा।

भुजरियों के समय में जो चित्र आल्हा गायकी से उभरते हैं वैसी ही स्थिति सैरा भी पैदा करता है। शौर्य और बुन्देली ओज से सराबोर सैरा अपनी विशिष्टता को उजाकर करता है, यथा –

आरे आरे हां सदा तुरैया अरे फूलै नहिं हो,
सदा नें साउन होय,
सदा नें राजा अरे रन जूझै,
सदा नें जीबे कोय ....
हुक्क हुइया हा हा।

हमेशा तुरैया नहीं फूलती और न ही हमेशा श्रावण बना रहता है। हमेशा ही राजा रण में जूझता नहीं रहता और न ही हमेशा कोई जीता रहता है।

आरे आरे हां नायें सें आ गई रे अरे नदी बेतवा,
मायें से केन धसान
इन दोइ के अरे भैया बीच में,
झंडा रोपै मरद मलखान ......
हुक्क हुइया हा हा।

इस तरफ से तो नदी बेतवा और उस तरफ से केन और धसान नदी में बाढ़ आ गई है और इन दोनों के बीच में ही मर्द मलखान ने अपना झण्डा गाड़ दिया है।

आरे आरे हां मचीं गुहांरी, अरे कनवज कीं,
कऊं हिरना सब खब जांय,
चीनों चीनों अरे सकियां हरौ हो,
असवार कहां से आंय .....
हुक्क हुइया हा हा।

कनबज की गुहांरी (खेत) मचे हुए हैं जिसमें हिरण गब (धंस) गब (धंसा) जाते हैं। अरी सहेलियों! इन्हें तो पहचानों भला ये असवार कहां के हैं?

आरे आरे हां हतियां पै के महाउती रे,
रोकौ रूपैया लेव
धरियक हांती ठांड़ौ करौ हम,
आल्हा खों देखन जायें ......

हुक्क हुइया हा हा।

अरे! हाथी के ऊपर बैठे महावती जरा हाथी को रोक रुपया ले लो। जरा थोड़ी देर के लिए हाथी को खड़ा करो, हम आल्हा को देखने जाते हैं।

आरे आरे हां हरे तौ बछेरा अरे परमाल के हां,
हारी सुआ बारी पूंद
हरी करोंदन अरे झक झालरी
दोइ दल में करत किलोर ....
हुक्क हुइया हा हा

परमाल के तो बछेड़ा जो हैं वे हरे रंग के हैं। उसकी पूंछ सुआपंखी है। हरी करौंदी की डांग में दोनों दलों के बीच वह किलोल कर रहा है।

आरे आरे हां दौरत आवै अरे नदी बेतवा हो,
डूबत आवै कछार,
अरे आदि तौ नदिया पानी बहै हो,
आदी रक्त की धार .....
हुक्क हुइया हा हा।

नदी बेतवा तो दौड़ती आ रही है, जिसके कारण उसके कछार डूबते जा रहे हैं। आधी नदी में तो पानी बह रहा है और आधी में खून की धार बह रही है।

आरे आरे हां खेतों लटकै अरे लट कांकुन हो,
बंदियन में लटक रई धान,
लाखन लटकें अरे घुड़लन पै,
जाकी सोभा न बरनी जाय .....
हुक हुइया हा हा

खेतों में लट कांकुन झूम रही है और बंदवास में (भरे खेतों में) धान लटकने लगी है। घोड़ों के ऊपर तो देखो लाखन झूमते दिख रहे हैं, जिसकी शोभा कही नहीं जाती।

आरे आरे हां रोमन रोमन अरे गांसी लगी हो,
बरमा असी सैल कौ घाव

मामा बिसवासी अरे आओ नें,
चौंड़ा जैतखम्भ लयें जाय ....
हुक्क हुइया हा हा

रोम–रोम में भिदे हुए हैं। ब्रह्मा को हजारों घाव हो गये हैं परन्तु मामा जिसका विश्वास था वह अभी तक नहीं आ पाया है। उस चौड़ा को देखो वह जैतखम्भ ही लिये जा रहा है।

आरे आरे हो ऊदल मारे हो, ऊदल मारे भली करी हो,
बड़ाई तौ भारी होय
लाखन राजा अरे, निज मारिऔ,
परदेसी पावनें आयें .....
हुक्क हुइया हा हा

ऊदल को मारा अच्छा किया इससे बहुत तारीफ हो रही है परन्तु लाखन राजा को नहीं मारना, वे परदेशी पाहुने हैं।

आरे आरे हां कहां,
धरी है करहा कटरियाएं हो,
कहां गेंड़ा की ढाल
कौनन टंगी है करहा कटरिया हो,
घुल्लन टंगी है ढाल ......
हुक्क हुइया हा हा।

कहां पर करहा कटार रखी हुई है और कहां पर गेंड़ा की ढाल रखी है? कोने में करहा कटरिया है और घुल्ले के ऊपर गेंड़ा की ढाल टंगी हुई है।

आरे आरे हां कहां धरो सुरसी कौ बागौ,
कहां निरमोला पाग
जमखाने में सुरसी कौ बागौ हो,
उतई धरी है पाग ......
हुक्क हुइया हा हा।

कहां पर सुरसी वाला बागा रखा हुआ है और कहां पर निर्मल पगड़ी रखी हुई है? जमखाने में सुरसी का बागा रखा हुआ है और वहीं पर पगड़ी रखी है।

आरे आरे हां अन्न में नोंनी, अरे जुनरी लगै हां,
धन में धौरी गाय,
सकियन नोंनीं अरे सगुना लगे,
मरदन में मरद मलखान .....
हुक्क हुइया हा हा।

अनाज में ज्वार अच्छी लगती है और धन–धान्य में धवल गाय अच्छी होती है। सहेलियों के बीच में सगुना शोभा देती है और मर्दों के बीच में मलखान मर्द लगते हैं।

आरे आरे हां अन्न में नोंनी जुनरी लगै हो,
गौअन में तो धोरी गाय,
रानिन में नोंनी फुलवा लगे हां,
कुंअरन में उदैसिंग राय ......
हुक्क हुइया हा हा

अनाजों में तो ज्वार अच्छी होती है। जैसे गायों के बीच में सफेद गाय। रानियों में तो फलवा रानी अच्छी लगती हैं और कुंअरों में उदयसिंह राय अच्छे हैं।

आरे आरे हां आसों के साउन, जूझ के हां
आगे के दैओं कराय,
नउनियां बुलाऔ री बखरी में हो,
बुलौआ दऔ फिराय ......
हुक्क हुइया हा हा।

इस वर्ष के श्रावण में युद्ध करके फिर तुम्हें आगे के दर्शन कराऊंगा। अभी तो खवासन को बुलाकर बुलौआ देने के लिए बुलाओ कि वह घर–घर जाकर निमंत्रण दे आये।

इसी तरह से रामाऔतारी सैरा में जहां रावण लंका के भीतर गरजता है वहीं भगवान श्रीराम अवधपुरी में और इन दोनों के बीच में देखो तो श्री हनुमान जी गरज रहे हैं।

आरे आरे हां लंका गरजै अरे रावना हां,
अवधपुरी भगवान
इन दोउन के अरे भैया बीच में,

गरज रहे हनुमान .....

हुक्क हुइया हा हा

इसी तरह से भुजरियों को लेकर एक चित्र सैरे को सजीवता प्रदान करता है–

आरे आरे हां लंका साउन महीना अरे नीको लगे हो,

गेंवड़े भई हरयार

साउन में भुजरिया बे दियौ हां,

भादों में दिऔ सिराय ....

हुक्क हुइया हा हा।

श्रावण का महीना अच्छा लगता है, गांव के बाहर हरियाली हो जाती है। श्रावण में भुजरिया बो देना और भादों के महीने में विसर्जित कर देना।

आरे आरे हां ऐसौ है कोउ धरमी रे,

बैनन खों लिऔ है बुलाय,

आसों के साउना घर के करौ हो,

आंगे के देहैं कराय (मिलाय) ....

हुक्क हुइया हा हा।

ऐसा कोई धरमी है जो बहनों को बुला लाये। इस वर्ष का श्रावण घर में ही करें और आगे के श्रावण में फिर मिल लेंगे।

आरे आरे हां धरीं भुजरियां मानक चौक में

बीरा रये कुमलाय

कैसी बहन हेटें परी हां,

बरबस लेत पिरान .....

हुक्क हुइया हा हा।

मानिक चौक के बीच भुजरिया रखी हुई हैं और पान के बीड़ा कुम्हला रहे हैं। बहिन किस प्रकार से अपनी अड़ी पकड़े हुए है, बरबस ही प्राण लेने पर तुली हुई है।

आरे आरे हां सोनें की मांद अरे दूद भरीं हो,

सोने भुजरियां लेऔ सिराय,

कै जैहें तला की पार पै हां,

कै जैहें भुजरिया सूक .....

हुक्क हुइया हा हा।

सोने की नाद तो दूध से भरी हुई है। सो तुम अपनी भुजरिया विसर्जित कर लो। अरे! भुजरिया तो तला की पार के ऊपर जायेंगी वर्ना ये रखी–रखी सूख जायेंगी।

ऋतु चित्रण के साथ सामाजिक सरोकारों का तालमेल हमें सैरे में ही दर्शित होता है :–

आरे आरे हां साउन सुहानी अरे मुरली बजै हां,
भदवां सुहानी मोर,
तिरिया सुहानी अरे जब ही लगै रे,
ललना झूलें पोंर के दोर ......
हुक्क हुइया हा हा

श्रावण के महीने में तो मुरली का स्वर भाता है और भादों के महीने में मयूर सुखद लगता है। स्त्री तभी अच्छी लगती है, जब उसका ललना दरवाजे के पास पोर में झूलता हो।

आरे आरे हां चौरई नोंरपा तोरे दिन कड़ गओ,
कनकौ लहरिया लेय
ठांड़ों घूमा अरे विनती करै हो,
मोरी टोरै फुदरियां कोय ....
हुक्क हुइया हा हा

बुन्देलखण्ड की सब्जियों में चौलाई और नौंरपा होते हैं, उसके लिये कहा गया है कि तुम्हारे दिन तो निकल गये, अब तो कनकौआ लहरा रहा है। खड़ा हुआ घूमा कह रहा है कि कोई आकर मेरा फुदना तोड़ ले।

इसी तरह से स्थान विशेष का उल्लेख सैरे के माध्यम से उजागर हुआ है –

आरे आरे हां टोरन टोर रे सागर बसो हां,
खुरई अले मैदान
गांव गढ़ीला रे ककरों बसो,
जेरवारौ तला के पास ....

हुक्क हुइया हा हा

अरे! ऊंची–ऊंची चोटियों पर तो सागर बसा हुआ है और खुले मैदान में खुरई की बसाहट है। गढ़ीला गांव तो कंकरीली जमीन में है और जेरवारौ तलाब के पास ही बसा हुआ है।

आरे आरे हां इकरन टिकरन अरे भैंसा बसो रे,
रांझी में पिपरिया गांव
नदी कछारन अरे सिमरी बसै हो,
पटपर पै जोधपुर गांव ......

टिकरों के ऊपर तो भैंसा गांव बसा हुआ है और झीला में अर्थात् उतार में तो पिपरिया गांव बसा है। नदी के कछार में सिमरी गांव है और पटपर पथरीली जमीन में जोधपुर गांव बसा हुआ है।

लोक विश्वासों की धरती से संपृक्त सैरों में शकुन–अपशकुन का भी चित्रण मिलता है –

आरे आरे हां पैले लिबउआ अरी बह जात हौ,
करिया तो काट गओ गैल
कै दुख हुइयें रे लुहरी सास के,
कै मिलें बलम नादान .....
हुक्क हुइया हा हा।

पहले पहल के लिवाने पर बहू जा रही हो, पर काले नाग ने तो रास्ता काट दिया है। सो, तुझे छोटी सास के दुख होंगे अथवा पति छोटे मिलेंगे।

आरे आरे हां पैली लुआई रे,
पैली लुआई अरे बेला जात हो,
करिया नें तो काटी गैल,
कै दुख हुइयें सास ननद के,
नातर बलम मिलें नादान ....
हुक हुइया हा हा।

पहले लिवाने पर बेला जा रही हो, पर काले नाग ने तो रास्ता ही काट दिया है। अब तो लगता है कि सास और ननद के दुख होंगे अथवा पति नादान मिलेंगे।

सामाजिक जीवन की झांकी और नारी मन की मनोव्यथा अपनी ऊर्जा के साथ सैरे में यत्र–तत्र फूटती रहती है। सैरे सीधे–सीधे भावनात्मक मनोदशा को अभिव्यक्ति देते हैं, तो नारी की हृदय वेदना को उद्‌घाटित भी करते हैं, उदाहरण स्वरूप कुछ सैरे दृष्टव्य हैं –

आरे आरे हां असड़ा तौ लागे रे असड़ा तौ लागे,
मोरे प्यारे दूब गई हरयाय
बीरन लुबौआ आये नहीं रे,
घर चुनरी धरी रंगाय ......
हुक हुइया हा हा

आषाढ़ माह लग गया है दूब की हरियाली छा गई है। भाई लेने के लिए अभी तक नहीं आया, मैंने अपनी चुनरी रंगाकर घर में रख ली है।

आरे आरे हां साउन सुहावनों पपिहा रटै
भदवां सुहानी मोर,
तिरिया सुहावनी जबइ लगौ रे,
बारौ खेलै पोंर के दोर ....
हुक हुइया हा हा

श्रावण माह में पपीहा की पिउ–पिउ बोली सुहावनी लगती है। भादों के महीने में मयूर। स्त्री तो तभी अच्छी लगती है जब उसका बालक दरवाजे पर खेलता हो।

आरे आरे हां बैल तो बेंचौ लीला धौरिया,
बेंचौ टगर के खेत
हंसिया लै लौ रे चांड़ी पीठ के,
जे पै चौपड़ खेलत जांय ....
हुक्क हुइया हा हा

लीला और धौरा बैल बेच दो और टगर के खेत भी बेच डालो। चौड़ी फल वाला हंसिया ले आओ, जिस पर बैठकर चौपड़ खेलते हुए चलें।

आरे आरे हां कजरा के कांटे लगें रे,
बेंदी सौत की कोर
आरों के नेहा अरे जे लागे,
मोय सालें आदी रात ......
हुक हुइया हा हा

काजल तो कांटे समान लगता है और बेंदी मुझे आंखों में खटकती रहती है। जब यार से नेह लगा हुआ हो तो वह मुझे आधी रात में दुःख देता है।

आरे आरे हां ऊंची अटरिया अरे मोरे छैल कीं,
हम पै चढ़ी नें जांय,
जाय जो कहिओ अरे उन छेल सें हां,
मोय कैयां उठा लै जांय .....
हुक हुइया हा हा

मेरे यार की तो ऊंची अटारी हे, उस पर मुझे चढ़ने में तकलीफ होती है। कोई जाकर मेरे यार से कह दे कि वह मुझे उठा कर ले जायें।

आरे आरे हां असड़ा तो गरजै अब सहुना लगे हां,
बन में कुहुक रई मोर,
बीरन लिबौआ अबै आये नहीं रे,
मोरौ सांय सांय जी होय ......
हुक्क हुइया हा हा

आषाढ़ माह तो गरज कर चला गया, अब तो श्रावण लग गया है। भाई लेने के लिए अभी तक नहीं आया है। मेरे प्राण तो घबड़ा रहे हैं।

आरे आरे हां साउन आये कछू लै दो हा,
लहंगा लाम झुलाम
लै दो चुनरिया अरे बड़े मौल की,
जीमें लिखे पपीरा मोर ....
हुक हुइया हा हा।

श्रावण आ गया है, कुछ ले दीजिये। अच्छा सा बड़े घेर वाला लंहगा और कीमती चूनर ले दो जिसमें पपीहा और मयूर बने हुए हों।

आरे आरे हां छिटक बुदैया निरमल जिन हुइऔ,
जिन मोरी बैरन होय
पिया पसर के बरदा ढीलें,
अरे सिजरिया सूनी होय ......
हुक हुइया हा हा

अरे चंदा! तू स्वच्छ निर्मल न होना और न ही तुम मेरे दुश्मन बनना। मेरे प्राण प्यारे पसर के लिए बैलों को ढील ले जायेंगे और मेरी सेज सूनी हो जायेगी।

आरे आरे हां ऊंची अटरियों अरे गोरी चढ़ गई
लै बेला में तेल
छोटे देखे रे जब बालम,
कहूं ठाड़े पटक दये तेल ......
हुक हुइया हा हा

गोरी तो ऊंची अटारी पर चढ़ गई, हाथ में बेला भर तेल लेकर। परन्तु जैसे ही उसने अपने प्रीतम को छोटा–सा देखा तो तेल का बेला खड़े–खड़े ही पटक दिया।

आरे आरे हां कंथा मोरे धोई धाई
धोई धरी मूंग की दार,
आज बिलम जा कंथा बावरे,
तुम जेऔ लेव जौनार ....
हुक्क हुइया हा हा।

अरे कंत! मैंने तो साथ करके धोकर मूंग की दाल रखी हुई है। अतः आज तो तुम ठहर जाओ ओर यह ज्यौनार जो मैं तैयार कर रही हूं, उसे खा लो।

आरे आरे हां अंगना सूकें सूकनें रे,
बन सूकै कचनार
गोरी धन सूकै अरे मायके में,
कोऊ हीन पुरुख की नार ....
हुक्क हुइया हा हा।

आंगन में तो अनाज सूख रहा है और जंगल में कचनार सूख रही है। गोरी तो अपने मायके में ही सूख कर कांटा हो रही है, वह किसी कमजोर पुरुष की स्त्री जो है।

आरे आरे हां कारी बदरिया अरे तोय सुमरों,
पुरवई परौं तुमारे पांव
आज तौ बरस जा अरे कनवज देस में,
मोरे कन्ता घरई रै जांय .....
हुक्क हुइया हा हा।

अरे! काली बदली मैं तेरा सुमिरन कर रही हूं और पवन मैं तेरे पैर पड़ती हूं। कम से कम आज तो इस कनवज देश में तू बरस जा, जिससे कि मेरे प्राण प्यारे घर में ही रह जायें।

आरे आरे हां चटक चुनरिया ना मैली भई,
ना धोबी घर गओ पटोर,
लाज न छूटी अरे नैनन की रे,
कंथा सीजन चले परदेस ....
हुक्क हुइया हा हा।

भड़कीले रंग वाली चूनर अभी तो मैली भी नहीं हुई और न ही धोबी के घर मेरी चादर ही धुलने जा पायी है, आंखों की लज्जा भी अभी नहीं खत्म हो पायी और प्रीतम परदेश के लिए जा रहे हैं।

आरे आरे हां कारी बदरिया तोरी पैयां परों,
कौंदा बीरन के बल जांय
आज बरसा जा मेरे देसा में,
मोरे कंता घरै रै जांय .....
हुक्क हुइया हा हा

अरे काली बदली! मैं तेरे पैर पड़ती हूं। हे बिजली! और चमक मैं भाई के समान तुम पर बलिहारी जाऊं। आज मेरे देश में तू बरस जा, जिससे मेरे प्राण प्यारे ठहर जायें।

आरे आरे हां ब्याह तौ लाये अरे पूरब सें,
कंकन बांदे हांत
ऐडी महाउर अरे छूटे ना,
रे कंथा सीजन चले परदेस ....
हुक्क हुइया हा हा

अरे! पूर्व से ब्याह कर तो ले आये, हाथों में कंगन बांधकर के ले आये। मेरी ऐड़ी के तो महावर भी नहीं छूटे हैं अभी और प्रीतम हैं कि वे परदेश के लिए जा रहे हैं।

आरे आरे हां उरजन गुरजन के झूला डरे, झूलै सबई सिंसार
एकइ ना झूलै रे लाखन बहू,
जी के कंता गये परदेश ....
हुक्क हुइया हा हा।

जहां–तहां गुर्ज के ऊपर देखो तो झूले पड़े हुए हैं। पूरा संसार झूला झूल रहा है परन्तु एक वही हैं लाखन की बहू जो झूला नहीं झूल रही हैं, क्योंकि उसके प्राण प्रिय विदेश गये हुए हैं।

आरे आरे हां तेल की फरिया मोरी फाटी ना,
ना छूटे हरद के दाग
हांत न मेहंदी मोरी छूटी ना,
कंथा मरन चले परदेश .....
हुक्क हुइया हा हा

अरे! अभी तो मेरी तेल वाली ओढ़नी फट नहीं पाई है। और ना ही उसके हल्दी के लगे हुए दाग ही छूट पाये हैं। हाथों में रची हुई मेंहदी भी मेरी नहीं छूटी है और कंत हैं कि मरने के लिए परदेश जा रहे हैं।

ऐसे ही एक टीस मन को कचोट देती है। जब सैरे के ये भाव उभर कर सामने आते हैं कि किसी बुजुर्ग ने अपने बेटे को जिस आशा, आकांक्षा और विश्वास के साथ पाल–पोसकर बड़ा किया था कि वह उसके बुढ़ापे का सहारा बनेगा परन्तु वह तो ससुराल में जाकर बस गया –

आरे आरे हां धन खों बछिया पाली हती रे,
कऊं रन खों ढाल तरवार
बेटा बुढ़ापे खों पाले हते हां,
गांडू जाय बसो ससरार ....
हुक्क हुइया हा हा

बहिन–भाई की भावना का चित्रण इस सैरे में सजीव हुआ है। इसके तहत् जीवन के सामाजिक धरातल पर कितना उसका महत्व आंका जाता है। वह स्पष्ट हो जाता है।

आरे आरे हां खेरे बिहूनें, अरे रुखड़ों बिना हो,
बिन सारे ससरार
बैन बिहूनी अरे भैया बिना हो,
गलियों में बिसूरत जाय ....
हुक्क हुइया हा हा

गांव तो वृक्षों के बिना वीरान लगते हैं और बिना साले की ससुराल भी शोभा नहीं देती। बिना भाई के बहिन गलियों में रोती चली जाती है।

आरे आरे हां खेत बिहूने,
खेत बिहूने अरे रुखड़ा बिना रे,
बिन सींगन की गाय,
बैन तो बिहूनी अरे भैया बिना हो,
गलियों में बिसूरत जाय।

खेत की मेड़ पर अगर वृक्ष न हो तो वह खेत उजड़ा हुआ सा लगता है। जैसे कि बिना सींग के गाय अच्छी नहीं लगती, वैसे ही बिना भाई के बहिन भी, रास्ते में रोती चली जाती है।

रस परिपाक की अनूठी मिशाल बुन्देली सैरे की अपनी पहचान है। इसमें जहां शरीर सौष्ठव, श्रृंगार भाव और खेती–किसानी के बीच नारी की कर्तव्य निष्ठा, कर्मठता तथा कर्म की क्रियाशीलता का भाव शब्दों के माध्यम से लोक जीवन की छटा बिखेरता

है, वहीं उसमें क्षेत्र विशेष की अपनी विशिष्टता और स्थानीय बोध का स्वरूप उजागर होता है –

आरे आरे हां उठी तौ बदरिया झुमकन लागी,
झुमकन बरस रऔ मेह
गूजर बिटिया अरे गोबर करै हां,
बाकी हेलचाव नइं लेय .....
हुक्क हुइया हा हा

बादल उठे और बरसने लगे। झमाझम बरसा वाले मेघ बरसने लगे हैं। गूजर की बेटी गोबर उठा रही है, पर उसके द्वारा टोकनी में इकट्ठा किया हुआ गोबर उससे उठ नहीं पा रहा है।

आरे आरे हां सीता की लरम हतुलियां रे,
कोमल अंक सरीर
बाड़ी बिसूरै अरे कारी डांग में हो,
सुरत भूले रघुवीर ....
हुक्क हुइया हा हा।

श्रीसीता माता के हाथ मुलायम और पतले हैं। कोमल उनका शरीर है। घनघोर घने जंगल में वह रो रहीं हैं। उनकी याद श्रीरघुवीर जी भूल गये हैं।

आरे आरे हां चंचल बहुरिया रे,
चंचल बहुरिया अरे हरवाये की
सींकन कजरा देय,
हर के मारे बखर के,
भोंदू सो गओ हां,
ओको कजरा लहरिया लेय .....
हुक्क हुइया हा हा।

हरवाहे की औरत चुलबुली है वह सींक से काजल लगाती है परन्तु उसका पति भोंदू हर–बखर चलाते–चलाते थक जाने के कारण सो गया है, परी उसका लगाया हुआ काजल लहरा रहा है।

आरे आरे हां कहां धरी माथे की बिंदिया,

कहां धरे हैं सिंगार

डबियन धरी माथे की बिंदिया हो,

बगसन धरे हैं सिंगार ....

हुक्क हुइया हा हा

माथे के ऊपर लगाने वाली बेंदी कहां पर रखी हुई है और कहां पर उसके श्रृंगार दान रखे हुए हैं? डिब्बों के भीतर उसके माथे की बिंदिया रखी हुई है और बक्से के भीतर उसका श्रृंगारदान रखा हुआ है।

आरे आरे हां चंचल लुगइया अरे हरवाये की,

सींकन कजरा देय,

मारे बखर के अरे भोंदू सो रए,

ऊको जीरा लहरिया लेय ....

हुक्क हुइया हा हा

हरवाहे की चपल औरत सींक के द्वारा काजल लगा रही है। पर दिन भर के बखर चलाने वाले भोंदू तो सो गये हैं, उसका जी लहरा रहा है। उसका जी हिलोरें मार रहा है।

आरे आरे हां सास मोय लै दे बजन घुंघरिया रे,

लै दे हां अंगिया मोय,

चुलिया लै दे रतन जड़ाव की हो,

जामें लिखे पपइरा मोर ......

हुक्क हुइया हा हा

अरे सासू जी! मुझे तुम बजने वाले और घुंघरियों वाले पांव के जेवर ले दो और पहनने के लिए अंगिया भी ले दो। चोली तो रनि जड़ाव वाली लेना जिस पर पपीहा और मोर बने हुए हों।

आरे आरे हां ककरी तौ खइये रे,

ककरी तौ खइये अरे नुन चरचरी,

डंगरा सेत सुपेत

यारी तौ करिये उन छैल सें

जी के ओंठन नें आई रेख ......

हुक्क हुइया हा हा

ककड़ी तो नमक लगी ही खाना चाहिए और डंगरा झक्क सफेद ही अच्छा मीठा होता है। दोस्ती तो उस छैल की अच्छी होती है जिसके ओठों के ऊपर अभी रेख नहीं जमी हो।

श्रृंगार और हास्य रस से सम्पृक्त सैरों की छटा भी कम निराली नहीं है। इसमें जहां हमें कबीरी धारा की छाप दिखती है वहीं अटका, टहूका और सीधे–सादे जीवन का रस अपनी सहजता के साथ बहता दिखता है।

आरे आरे हां बांड़ी लखुरिया अरे कोदों दरै हां,
गावै राग मल्हार
दानों में एकऊ अरे बाहर गिरे रे,
ऐ ऊकी कुदई महोबे जाय ......
हुक्क हुइया हा हा।

पूंछ कटी हुई लखुरिया कोदों को दलती है। वह राग मल्हार को गा रही है। उसके हाथ से एक भी दाना बाहर नहीं गिर पा रहा है। उसकी कुदई महोबे जा रही है।

आरे आरे हां ढीमर घर लरका भये रे,
धरें मुड़ीसें जार
मछरी रोई रे कऊं ताल में,
मोरे आ गये जी के काल ......
हुक्क हुइया हा हा।

सिरहाने रखे हुए जाल को ढीमर के घर लड़का पैदा हो गया है। यह सुनते ही किसी तालाब में मछली रोते हुए कहती है कि मेरे जी के लिए एक और काल आ गया है।

आरे आरे हां फूल अकौआ अरे फूलियौ रे,
पीपर फूल न होंय
का तौ टटोबै डाड़ीजार के,
जोबन में हाड़ नें होंय ....

हुक्क हुइया हा हा

अरे! आक में फूल फूलते हैं, पर पीपल में फूल नहीं होता है। अरे, दाढ़ीजार! तू क्या टटोल रहा है, यौवन में हड्डी नहीं होती।

आरे आरे हां गोरी के जुबना हुमकन लागे,
जैसे हिरनियां के सींग,
मुरख जानें खता फुनगुनूं रे,
बो तौ बांट लगावै नीम ....
हक्क हुइया हा हा

गोरी के स्तन उठने लगे हैं, जैसे हिरण को सींग निकलते हैं। मूर्ख समझता है कि कोई फोड़ा–फुन्सी हो गया है, अतः वह तो बांट कर नीम लगा रहा है।

आरे आरे हां चिंटी तौ बैठी अरे महुआ तरें हो,
नों खरिया भूसा खाय
सात समुद को अरै पानी पियै,
ये बातौं भूकइ भूंक चिल्लाय ....
हुक हुइया हा हा

एक चींटी है जो महुए के वृक्ष के नीचे बैठी हुई है। वह नौ खरिया तो भूसा खा जाती है। सात समुद्र का पानी पी जाती है। फिर भी भूख–भूख चिल्लाती रहती है।

आरे आरे हां कारी बड़ैरी अरे लौहे की हो,
रूपे के लागे किबार
चारऊ चिरैयां अरे सोने कीं,
गढ़ लाये सुगर सुनार ......
हुक हुइया हा हा

काले रंग वाली जो बड़ैरी है वह लोहे की है। चांदी के दरवाजे लगे हुए हैं और चार जो चिड़ियां बनीं हुई हैं, वे सोने की हैं। देखो, कितने सुघड़ सुनार गढ़ कर लाये हैं।

नारी का मन भी देखें, जो एक प्रकार का सजगता का पाठ पढ़ाती दिखती हैं और सचेत भी करती हैं –

आरे आरे हां जुबरी बाजरा पिया मोरे जिन बैओ,
को रखबरिया जाय,
हम दुर जैहें अपने मायके,
तोरी सुआ बाल लै जाय .....
हुक हुइया हा हा

अरे प्रीतम प्यारे! तुम ज्वार–बाजरा नहीं बोना। उसकी रखवाली के लिए भला कौन जायेगा? मैं तो अपने मायके चली जाऊंगी और उसकी बालों को तोते ले उड़ेंगे।

आरे आरे हां गेंवड़ेंम जुनरिया अरे जिन बऔ,
को रखबरिया जाय,
हम दुर जैहें मायके हां,
तोरे भुन्टा बरेदी खांय ......
हुक हुइया हा हा

अरे! गांव के नजदीक वाले खेत में ज्वार नहीं बोना, उसकी रखवाली के लिए कौन जायेगा। हम तो अपने मायके चले जायेंगे और ज्वार के भुट्टे को बरेदी खा जायेंगे।

लोक जीवन में यह सरसता, सजगता और सचेतन भाव लोक को जीवनी शक्ति देता है। समय की कसौटी पर स्पष्ट रूप से अंग्रेजों की कारगुजारियों को सैरे में व्यक्त किया गया है।

आरे आरे हां ऐड़ी टेड़ी पगड़ी
अरे लरका जिन बांदियौ,
अरे जिनइं बजारै जाव
राज बुरौ है रे अंगरेज कौ,
कऊं टंगे–टंगे मर जाव ......
हुक्क हुइया हा हा।

अरे लड़के! तुम तिरछी पगड़ी बांधकर नहीं निकलना और न ही बाजार को जाना। अंग्रेजों का यह राज बहुत ही बुरा है। कहीं भी तुम टंगे–टंगे मर जाओगे।

प्रश्नोत्तर शैली में भी सैरा गाया जाता है। इसके अंतर्गत सैरा तो पुरुष वर्ग ही गाता है पर वह पुरुष और नारी दोनों के मनकी मनोदशा को कुछ इस तरह से उद्घाटित करता है –

आरे आरे हां सरग तरैयां अरे कौनें गिनीं,
कौनें मूंड़ के बार,
बंसा की पतियां रे कौने गिनीं,
कौना हिलोरे ताल ......
हुक्क हुइया हा हा

आसमान के तारे भला किसने गिने हैं और किसने सिर के बालों को गिना है। बांस के पत्तों को कौन गिन पाया है। किसने तालाब को हिलोर लहरा दिया है। उत्तर है –

आरे आरे हां सरग तरैयां रे चंदा गिनीं,
ककई मूंड़ के बार,
बंसा की पत्तियां भौंरा गिनीं हां,
राजा राम हिलोर दये ताल ......
हुक्क हुइया हा हा।

आसमान की तरैयां तो चन्द्रमा ने गिनी हैं। कंघी ने सिर के बालों को गिना है। भंवरे ने बांस की पत्तियां गिनी हैं और राजा राम जी ने ताल को हिलोर दिया है।

आरे आरे हां बैठीं तो रइऔ अरे रानी सतखंड़ों हो,
खइऔ डबौं के पान,
जब हम लोटें सिंहदेस सें,
तोर मुतियन भरैहों मांग .....
हुक्क हुइया हा हा

अरे रानी! तुम तो सतखंडों पर बैठे रहना और मचले के पान खाना। जब हम सिंहलदेश से लौट आयेंगे तो तुम्हारी मोतियों से मांग भरा देंगे।

आरे आरे हां जर जा तौ बर जा रे,
जर जा तौ बर जा अरे तोरे सतखंडा हो,
पानों पै पर जा तुसार,
तोरे अकेले अरे जीरा बिना रे,
मोय सूनों लगै संसार .....
हुक्क हुइया हा हा

अरे! तुम्हारे ये सतखंडा तो जल जायें, उनमें आग लग जाये और पान के ऊपर तुषार पड़े। अरे! तुम्हारे अकेले बिना तो मुझे यह समूचा संसार सूना लगता है।

आरे आरे हां कै डर भागे रे आल्हा डर,
हां कै तौ ऊदल की हांक,
भेद बता दे अरे जियरा के,
कैसें छोड़े उरई मैदान .....
हुक्क हुइया हा हा

अरे! क्या आल्हा के डर के मारे भागे हो कि तुमने ऊदल की हांक सुनी है जिसके डर से भागे हो। अपने हृदय के भेद तो बताओ कि तुमने उरई के मैदान भला कैसे छोड़े हैं?

आरे आरे हां नें हम भागे अरे आल्हा डर,
अरे नें ऊदल की हांक,
खरच बड़ा गये अरे जियरा के,
जैसे छोड़े उरई मैदान ....
हुक्क हुइया हा हा

अरे! न तो हम आल्हा के डर से भागे हैं और न ही ऊदल की हांक से भागे हैं। हमारे तो जीरा के खर्च खत्म हो गये थे। इसीलिये हमने उरई मैदान को छोड़ा है।

आरे आरे हां चांउर चकौटन मैंने धोकें धरे हैं,
घी में मोके कनक उर दार
घरियक बिलमौं अरे मोरे राजा,
तुमरी धनियां तपै जेवनार ......
हुक्क हुइया हा हा।

चावलों को मैंने चकौटी में धोकर रखा है और घी में मोन लगाकर आटा और दाल को रखा है। अरे प्रीतम प्यारे! जरा देर के लिए तो ठहरो, तुम्हारी धना ज्योनार तैयार किये देती है।

आरे आरे हां चांउर चिरैयन खौं चुनवा देऔ,
बामने देऔ कनक घी दार,
मोरौ पनवारौ अरे समर बीचां,
परसा ठांड़ो दुसमन आय .....
हुक्क हुइया हा हा

चावलों को तो चिड़ियां को चुना देना और ब्राह्मण को आटा–घी–दाल दे देना। मेरी थाली तो युद्ध के बीच में लगी है, वहां पर परसा जो दुश्मन है वह खड़ा हुआ है।

आरे आरे हां बैठीं तो रइऔ रे,
बैठीं तौ रइऔ अरे रानी सतखंडों हां,
सुक में खइऔ डबन भर पान,
जीत जंग खों जब घर आहों,
तोरी मुतियन भरांऊं मांग ......
हुक हुइया हा हा।

अरे रानी! तुम तो सतखण्डों में बैठे रहना और डब्बों भर–भर के पान खाना। जब मैं जंग जीत कर घर लौटूंगा तो तुम्हारी मोतियों से मांग भरा दूंगा।

इस तरह से सैरा अपनी चरम सीमा पर पहुंचता है और उसमें एक उमंग और उत्साह समाया होता है। सैरे का घेरा एक ही रहता है। गायन और उसमें साथ देने के लिए व्यक्ति बंटे हुए रहते हैं। आधे एक ओर से गाते हैं और आधे या तो प्रश्न का उत्तर गाकर देते हैं अथवा दूसरे सैरे को उठाते हैं। इस प्रकार यह क्रम घंटों चलता रहता है। लोक बरसा ऋतु में पसीने से तर–बतर हो जाते हैं। सैरे गायन की यह खासियत होती है कि इसको देखने वाले के शरीर में भी रोमांच हो उठता है। उसके अंग फड़कने लगते हैं। उसकी नसों में जोश भर जाता है। मन हिलोर मारने लगता है। यह सैरा 'नृत्य प्रधान गीत' है। इसमें पुरुष ही भाग लेते हैं। गिनती व्यक्ति की 10

से लेकर 20–25 तक हो जाती है। पहनावा तो व्यक्तियों का सामान्य ही रहता है। वे परदनी पहने होते हैं। उसे घुटनों के नीचे तक होने के कारण खूंटी में खोंस लिया जाता है जिससे कि उछलने, कूंदने, घूमने, मुड़ने, बैठने या झुकने में फंसे ना। कमर में गमछा बांध लिया जाता है। मिरजई, कतैया या बंडी शरीर के ऊपर होती है। नंगे पैर होते हैं। सैरा प्रायः संध्या समय से शुरू हो जाता है, जो देर रात तक चलता रहता है। सैरे में डंडों की आवाज ढोलक की थाप के स्वर से स्वर मिलाते सुनाई पड़ती है। पैरों के आघात जमीन पर घेरे में चलने, घूमने वालों के अनुकूल मिलकर नृत्य की मुद्रा के साथ पड़ते हैं। हाथों का संचालन भी सधा हुआ होता है। अगर कहीं डड़ला जरा–सा चूका तो उसका वार असहनीय हो जाता है। सैरे में इसके बारे में गाया भी जाता है कि –

आरे आरे हां सैरो तो सैरो रे,
सैरो तो सैरो अरे सब कोऊ कहे हां,
सैरो भलौ नें होय,
डड़ला जो चूकै अरे बैयां लागै,
जेकी पीरा सही नें जाय .....
हुक्क हुइया हा हा

सैरा–सैरा तो सभी कहते हैं पर यह सैरा अच्छा नहीं होता। अगर कहीं डड़ला चूक गया तो बांह पर सीधा लगता है, जिसकी पीड़ा असहनीय हो जाती है। वह दर्द कोई सह नहीं पाता।

और इसीलिए सैरा खेलने वाले की पत्नी उससे कहती है कि –

आरे आरे हां सैरों–सैरों रे,
सैरों–सैरों पिया ना रटौ रे,
कऊं सैरों भलौ नईं होय,
कम्मर लटकै उर सिर डोलै हां,
जाकी मार दुहैरी होय ....
हुक्क हुइया हा हा।

अरे प्रीतम प्यारे! सैरा–सैरा की रटन अच्छी नहीं होती, उसको रटते नहीं रहो। यह सैरा भला नहीं होता है। इसमें तो कमर लचकती रहती है और सिर डोलता ही रहता है। इसकी मार भी दोहरी होती है।

सैरे में डड़ला (डण्डा) एक विशेष प्रकार का ही प्रयोग में लाया जाता है। इसके बारे में कहा जाता है कि –

आरे आरे हां डड़ला काटन रे,
डड़ला काटन मोरे पिया गये हां,
उन लागो बड़ौ सौ झेल,
खेर कुल्हाड़ी अरे मोंथल भई,
कऊं बीजौ मिलो नें बहेर ....
हुक्क हुइया हा हा।

मेरे प्रीतम तो डड़ला काटने के लिए गये थे परन्तु उन्हें बहुत देर लग गई। उनकी खैर वाली कुल्हाड़ी थी सो वह बोथरी हो गई, उन्हें शायद बहेरे का बीजा नहीं मिल पाया होगा या सार नहीं मिल पाया होगा। डड़ला प्रायः इन्हीं लकड़ियों से बनता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड का यह सैरा लोकगीत सामाजिक, राष्ट्रीय और लौकिक मान्यताओं के बीच अपनी अमिट छाप छोड़ता है। उम्मीद है कि सैरे के माध्यम से बुन्देली लोक की सजगता, कर्मठता और रसिकता की बानगी लोक साहित्य के क्षेत्र में सार्थक पहचान को प्रस्तुत करने में सक्षम होगी।

l|jk uR; e! i!;Dr gkus okyh xhr % dj[kk&l|jk&lk[kh

dj[kk

खेरे की गा लऊं अरे खैरापति हो, मेड़े मिड़ोइया देव।
जरिया–झुनियां अरे ऐई गांव के, देवा नाव नें जाने कोय।।

बुन्देलखण्ड में किसी भी तरह के गायन अथवा नर्तन में 'सुमरनी' गाई जाती है अर्थात् देव–स्मरण, सर्वप्रथम हम ग्राम देवी खैरापति का स्मरण (आव्हान) करेंगे। तत्पश्चात् ग्राम की सीमा के रक्षक देवों का स्मरण करेंगे, इनके अतिरिक्त जो भी इस गांव की भूमि के देवता हैं, उनका स्मरण करेंगे, जाने–अनजाने सबको गायन में गाकर स्मरण करेंगे कि आप सब देवी–देवता हमारे इस कार्य को सफल बनाने का आशीष देकर हमारी रक्षा करें।

खेरे विहूने अरे रूखड़ों बिना हो, बिन सारे सुसरार।
बैनी बिहूनी अरे भैया बिना, गलियों में बिसूरत जाय।।

कोई भी गांव बिना वृक्षों के सूना–सूना लगता है, इसी तरह से अगर किसी ससुराल में साला न हो तो वह भी सूनी–सूनी लगती है। बहिन का यदि कोई भाई न हो तो उसे बिना भाई के सारा घर सूना लगता है, वह भाई की कमी को याद करके गलियों में रोया करती है।

असढ़ा तो उतरे अरे सहुना लगे हों, दूब गई हरयाय।
वीरन लुबौआ अरे आये नहीं, घर चुनरी धरी है रंगाय।।

असाढ़ माह खत्म हुआ तो श्रावण लग गया। इस समय वारिस होने से दूब में हरियाली बढ़ गई है। एक युवती अपनी ससुराल में अपने भाई के आने की प्रतीक्षा कर रही है उसने मैके जाने के लिए एक चूनर अलग से रंगवाकर रख ली है।

सहुना लागे अरे कछु लै दियो हो, लंहगा लाम झुलाम।
फरिया तो लैदे अरे रेशम पाट की, जेमें लिखे हो पपीहा मोर।।

एक स्त्री अपने पति से कहती है कि देखो श्रावण महीना आ गया मेरे मैके से मुझे लिवाने भाई आवेंगे इसलिए तुम मुझे एक घाघरा ले आना तथा एक रेशम की ओढ़नी भी लाना जिसमें मोर–पपीहे लिखे हों।

ikbl

पाई गायन मध्यम लय में होता है, इस समय नृत्य का श्रृंगारी पक्ष दृष्टिगत होता है उसी तरह से गीत भी प्रायः श्रृंगारिक होते हैं।

जाव राधे चली जाव राधे, मनमोहन खों ढूंढ लाव जाव राधे।
सर पै धर लो दयी की मटकिया, अरे मोरे राधे दई की मटकिया।

गुजरन वन चली जाव राधे, मनमोहन खों ....
सर पै धरलो फूलों की डलिया, अरे मोरे राधे फूलों का डलिया।

मालन वन चली जाव राधे, मनमोहन खों ....
जाव राधे चली जाव राधे ....

अरे वृषभान दुलारी राधे तुम मनमोहन कृष्ण को तो ढूंढकर ले आओ। उन्हें ढूंढ़ने के लिए तुम अपने सिर पर दही की मटकी रख लो और गूजरी बनकर चली जाना, वे मिल जावेंगे। अगर फिर भी न मिलें तो तुम अपने सिर पर फूलों की डलिया रखकर चली जाओ वे कहीं न कहीं तो मिल ही जावेंगे।

बहै सामूधार कौन नदी रे,
कौना नदी बहे उहरन–पुहरन कौना रे, बहे सामूधार ....

गंगा नदी बहे उहरन–पुहरन जमना रे, बहे सामू धार ....
पैले पार की ढ़ीमर लरको मोखों रे, उतारो पार मोखों रे ....

मैं तोरबों पार उतारों बहुरिया, तें मोखों रे, काहो देयतें ओखों रे .....
हांत को देंहो छल्ला फूंदरा औरई रे, हिये को हार औरई रे,

बहै सामूधार कौन नदी रे ....

कौन–सी नदी सीधी धार में बहती है? कौन नदी नालों, पहाड़ों से होकर बहती है? गंगा सीधी धार में तथा यमुना नालों पहाड़ों में होकर बहती है। एक स्त्री नदी के उस पार है उसे इस पार आना है तो वह नाविक से कहती है कि अरे नाविक मुझे नाव से उस पार उतार दो। नाविक कहता है कि अगर मैं तुम्हें पार ले जाऊंगा तो तुम उसके बदले में मुझे क्या दोगी .....? स्त्री बोली कि मैं तुम्हें अपनी उंगली में

पहना हुआ छल्ला दूंगी तथा गले का नौलखा हार भी दे दूंगी लेकिन तुम मुझे पार करवा दो।

<u>iMxj</u>

सुख सोवे सहर जागे रे रसिया, सुख सोवे ....
जब मोरे रसिया फरकों हो आये,
सोई भौंक उठी रे बैरन कुतिया, सुख सोवे ....

सोई जब मोरे रसिया अंगना हो आये,
डिड़क उठी रे बैरन पड़िया, सुख सोवे ....

सोई जब मोरे रसिया आये उसारों,
सो चरक उठी रे बैरन खटिया, सुख सोवे ....

जब सारा संसार मध्य रात्रि में सुख की नींद में सोया रहता है, तब मेरा प्रेमी जागता है और मुझे मिलने मेरे घर आता है, लेकिन उसके घर तक आते–आते कितनी बाधायें आयीं। जब वे घर के बाहर तक आये थे, उस समय बैरन कुतिया ने भौं–भौं करना शुरू कर दिया। जब वे आंगन में आये तो पड़िया ड़िड़कने लगी और जब वे मेरे बिस्तर पर आये तो ये बैरन खाट चरमारा उठी। हमारे मिलन के बीच कितनी बाधायें नहीं आयीं।

रसिया बिना गौनो मोरो के ले जाय, रसिया बिना ....

सोई पैले लुबौआ मोरे ससुरा री आये, ससुरा री आये
ससुरा के संगे मोरी जेहे नें बलाय, रसिया बिना ....

सोई दूजे लुबौआ मोरे जेठा री आये, जेठा री आये
सो जेठा के संगे मोरी जेहे नें बलाय, रसिया बिना ....

तीजे लुबौआ मोरे देवरा री आये, देवरा री आये
सो देवरा के संगे मोरी जेहे न बलाय, रसिया बिना ....

सोई चौथे लुबौआ मोरे सैंयां री आये, सैंया री आये
सो सैंया के संगे मोरी डोली चली जाय, रसिया बिना ....

रसिया बिना गौनो मोरो को ले जाय, रसिया बिना।

जिसके संग मेरा विवाह हुआ है, मैं तो गोना भी उसी के संग कराऊंगी। इसीलिए मेरा गौना दूसरा कोई भी नहीं करवा सकता। गौना कराने पहले पहल मेरे श्वसुर जी आये हैं, लेकिन उन के साथ मेरी बलाय जाये। दूसरी बार मुझे लेने मेरे जेठा जी आये, उनके साथ भी मैं नहीं जाऊंगी। तीसरी बार मेरा देवर मुझे लेने आया, लेकिन मैं उसके साथी भी क्यों जाऊं। चौथी बार मेरा गौना कराने मुझे लेने मेरे पति आये हैं, अब तो मैं उनके साथ खुशी–खुशी चली जाऊंगी। मैं तो डोले में बैठकर अपने पति के साथ जाऊंगी।

***

मामुलिया

भूमिका :–

भारत भूमि त्यौहारों की पुण्यभूमि है। बुन्देलखण्ड में जितने त्यौहार और लोकोत्सव होते हैं, उतने किसी भू–भाग में नहीं होते। आज के भौतिकवादी युग में जहां मानव की व्यस्तता क्षण–प्रतिक्षण बढ़ती जा रही है, समयाभाव से उत्साह और उमंग और उल्लास का ह्रास हो रहा है। मुस्कराहट, हंसा और ठहाके कोसों दूर होते जा रहे हैं, वहां जन–जीवन को सरस, सामान्य और स्वस्थ बनाने में ये लोकपर्व अपनी अहं भूमिका निभाते हैं।

हमारे क्षेत्र की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के रक्षक लोक–पर्व हमारी अमूल्य धरोहर हैं। बुन्देलखण्ड में बालिकाओं का ऐसा ही लोकोत्सव है ''मामुलिया''। मामुलिया के खेल में प्रयुक्त पुण्य जीवन के सुख और नारी सौन्दर्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। फूल–फल युक्त बेलें सम्पन्नता और समृद्धि की प्रतीक हैं। कल्पवृक्ष इच्छा की पूर्ति करने वाले मन का द्योतक है और वटवृक्ष चिरंतन रहने वाले प्राण का। तुलसी पवित्रता की प्रतीक है। ये सब तांत्रिक प्रतीक न होकर लोक प्रतीक हैं।

ekeqfy;k %&

बालिकाओं के विभिन्न अवसरों एवं ऋतुओं के गीतों में मामुलिया के गीत भी आते हैं। बुन्देलखण्ड में कुमारी बालिकाएं भादों मास में कहीं–कहीं क्वार के कृष्ण पक्ष में मामुलिया के गीतमय खेल खेलतीं हैं। इसके लिए कोई निश्चित तिथि या वार नहीं होता। यह संध्या के समय खेला जाता है। आंगन में बीच गौबर से चौकोर लीपकर और चौक पूरकर बबूल की कांटोवाली हरी झाड़ी लगा दी जाती है यही मामुलिया है। हल्दी और अक्षत से पूजा करके कांटों में फूल खोंस दिये जाते हैं। चने, ज्वार के फूले, फ्रूट, कचरिया आदि का प्रसाद चढ़ाकर बालिकाएं उसकी परिक्रमा लगाती हैं। उसे उखाड़ कर किसी तालाब या नदी में सिरा देती हैं। वे मामुलिया को पुष्पादि से सजातीं हैं। सजाते समय गाती हैं –

ल्याओ–ल्याओ चंपा चमेली के फूल,
सजाओ मोरी मामुलिया।

मामुलिया के आये लिबौआ,
झमक चली मेरी मामुलिया।

पूजन में मामुलिया के स्तुति गान हैं –

चीकनी मामुलिया के चीकने पतौआ,
बरा तरें लागी अथैया।

कै बारी भौजी बरा तलें लागी अथैया,
मीठी कचरिया के मीठे जो बीजा,
मीठे ससुरजू के बोल।

काई कचरिया के काए जो बीजा,
काए सासजू के बोल,
कै बारी बैया, करए सासजू के बोल।

ससुर जी के बोल भले ही मीठे लगते हों, परन्तु सासजू की वाणी उतनी ही कड़ती है, जितनी कड़ती कचरिया के बीज।

जान पड़ता है कि बबूल का वृक्ष बहुतायत से पाये जाने का कारण उसकी उपयोगिता देख देव के रूप में उसकी पूजा की जाती है। यह प्राचीन अनुष्ठान का अवशिष्ट रूप जान पड़ता है।

बुन्देली लोक साहित्य, डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव, रंजन प्रकाशन आगरा 1984, पृ. 49

मामुलिया के आए लिबौआ, झमक चली मोरी मामुलिया,
जितै बाबुल जू के बाग, उतै मोरी मामुलिया,

आजी देखन आई बाग, सजाय ल्याव मामुलिया,
लाओ चंपा चमेली के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया,

लयाओ घिया तुरैया के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया,
जिहै–जिहै वीरन जू के बाग, उतै मोरी मामुलिया,

भावी देखन आई बाग, सजाय ल्याव मामुलिया,

ल्याओ चंदा चमेली के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया,

जितै–जितै बाबुल जे के बाग, उते मोरी मामुलिया,
मैया देखन आई बाग, सजाय ल्याव मामुलिया,

ल्याओ चंदा चमेली के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया।

——

चनदा के आसपास गौअन की रास,
बिटियां पूजें सब–सब रात,

चन्दा राम राम ले ओ,
सूरज राम ले ओ, हम घरै चले।

चंदा के आसपास मुतियन की रास,
बिटियां पूजें सब सब रात।

चंदा राम राम ले औ
सुरज राम राम ले औ, हम घरै चले।

बुन्देलखण्ड का लोकजीवन, अयोध्या प्रसाद गुप्ता, कुमुद, संस्कृति विभाग (उ.प्र.) 1967, पृ. 21

ekeqfy;k %

मामुलिया सी जिन्दगी, कहुं कांटे कहुं फूल
ले ओ संवार आवसीर में, होत सबई में भूल।

लइयो लइयो चमेली के फूल,
सजइयो मोरी मामनुलिया,

सज वरन–वरन सिंगार,
सिरहयो मोरी मामुलिया।

कौना लगाये बमूला के बिरछा,
और जरिया की डार,

सिरइयो मोरी मामुलिया ....

वन तुलसी गुलबंगा बेला,

निके रची कचनार।

सिरइयो मोरी मामुलिया।
बालापन के सपने सहाने,

और अंसुअन की धार,
सिरहयो मोरी मामुलिया।

निरई जग जो पीर न जाने,
और निठुर करतार,

सिरइयो मोरी मामुलिया ....

माई बाबुल की देहरी छूटी,
छूटो वीरन नेह अपार,

सिरहयो मोरी मामुलिया,
छूट गई संग की गुइयां,

छूटी रार तकरार,
सिरहयो मोरी मामुलिया ......

बुन्देली बसंत अंक–5, 2004, छतरपुर डॉ. प्रेमलता नीलम, पृ. 95

मामुलिया आश्विन मास की पूर्णिमा, अमावस्या तक पितृपक्ष में बुन्देलखण्ड के गांव व शहर में कुंवारी कन्याओं का विशेष खेल होता है, जिसे मामुलिया के नाम से जाना जाता है। इस लोकोत्सव में बालिकायें बेरी की डाल को फूलों से सजाकर लाल पटका पहना कर स्त्री रूप में मानकर पास–पड़ौस सबके घरों में ले जाती हैं तथा गाती हैं –

मामुलिया के आये लिवउआ,
झमक चली मेरी मामुलिया।

ल्याओ–ल्याओ चम्पा चमेली के फूल,
सजाओ मेरी मामुलिया।

सभी मामुलिया के दर्शन कर स्नेह पूर्वक मामुलिया के पूजन तथा विदा के लिए धन देते हैं। बालिकाएं चौक पूरकर मामुलिया को उस पर रख पूजा करतीं हैं।

अंत में मामुलिया के गले मिलकर विदा लेती हैं तथा उदास होकर उसे पास के नदी या तालब में विसर्जित कर देती हैं।

मामुलिया में स्त्री जीवन का दर्शन निहित है जिस प्रकार बेरी का पेड़ प्रत्येक वातावरण में बिना विशेष पोषण के फूल, फल देने की क्षमता रखता है उसी प्रकार स्त्री अपने परिवार को सद्गुणों रूपी फलों से सजाकर सन्तान रूपी फल तथा कांटों के समान प्रहरी बना सुरक्षा प्रदान करती है।

बसंत 2000, श्रीमती मधु श्रीवास्तव, पृ. 3

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त के अनुसार क्वार मास के कृष्णपक्ष में क्वांरी कन्याएं मामुलिा या माहुलिया खेलती हैं। लोक प्रचलित शब्द है – ''मामुलिया खेल रयीं'' जिससे वह एक खेल प्रतीत होता है। लेकिन जब कन्यायें बेरी की कांटेदार शाख लेकर उसे विभिन्न प्रकार के पुष्पों से सजाकर और फल, मेवादि खोंसकर लंहगा एवं ओढ़नी में मानवीकृत कर देतीं हैं तथा लिपे स्थान पर चौक पूरकर उसे प्रतिष्ठित करने के बाद हल्दी, अक्षत, पुष्पादि से पूजतीं हैं और अठवाई, पंजीरी, हलुआ, फलादि का भोग लगाती हैं, तब वे देवी सिद्ध होती हैं और पूरा खेल उनकी उपासना हो जाती है। अतएव मामुलिया की पहचान एक प्रमुख समस्या है। यदि वह नारीरूपा मानती है, तो यह निश्चित है कि कन्याएं उसकी पूजा नहीं कर सकतीं, क्योंकि बुन्देलखण्ड में कन्या के चरण–स्पर्श सभी स्त्री–पुरुष करते हैं। यह बात अलग है कि मामुलिया कोई सती या विशिष्ट आदर्श की प्रतीक नारी हो, जैसा कि एक गीत की पंक्ति से लगता है –

मामुलिया के आ गये लिबौआ,
झमक चली मोरी मामुलिया।

मामुलिया में नारीत्व की प्रतीकात्मकता तो है, जैसे पुण्यों की कोमलता, सुन्दरता और प्रफुल्लता, कांटों की प्रखरता, संघर्षशीलता और वेदना तथा फलों की सृजनशीलता, उदारता और कल्याण की भावना सब नारी में निहित है। इन गुणों के साथ उसमें पतिव्रत्य की साधना के लिए पूरी–पूरी तत्परता है। सतीत्व की संकल्पधर्मिता के कारण वह नारी का अनुकरणीय मॉडल बन जाती है। इस प्रकार की समन्विता नारीमूर्ति देवी ही है। संजा को देवीरूपा माना गया है, इस दृष्टि से मामुलिया को देवी की लोकमान्यता निश्चित ही मिली थी।

एक प्रतीकात्मकता यह भी है कि पुष्प रूपी सुख और कांटे रूपी दुःख से यह जीवन बना है। जीवन का जब तक श्रृंगार होता है, तब तक उसके लिबौआ (विदा कराने वाले) आ जाते हैं। यह क्षणभंगुरता जीवन की अस्थिरता को सांकेतित करती है। इस प्रकार मामुलिया में दार्शनिक महाबोल की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हुई है, इसीलिए इसे महाबुलिया, माहुलिया कहा जाता है।

ekeqfy;k vkSj Vslw ls laca/k %&

बुन्देलखण्ड जनपद बहुत बड़ा है, अतएव उसके लोकोत्सवों के स्वरूप में विविधताएं हैं। दतिया की तरफ ढ़िरिया मांगना चतुर्दशी तक चलता है और पूर्णिमा को अन्त्येष्टि–भोज होता है। पड़ा सुअटा की गर्दन काट देता है। उरई–जालोन तरफ नवमीं से चौदस तक टेसू खेला जाता है और पूर्णिमा को टेसू तथा ढ़िरिया या झिझिया का विवाह होता है। एक लोककथा के अनुसार झिझिया सुअटा की पुत्री थी, जिसे देखकर टेसू नामक वीर आकर्षित हुआ था। वह सुअटा को हराकर झिंझिया से विवाह कर लेता है। उसी अवसर पर सुअटा के अंग–भंग कर उसे लूट जाता है। इसी तरह मामुलिया और सुअटा को बहिन भाई मानकर कथा की एकसूत्रता सिद्ध की जाती है।

लोककथाकार कथा का विस्तार करने में बहुत कुशल होता है। वह पात्रों के संबंधों की स्थापना से कथा को अन्वित कर देता है। काल–संकलन भी उसमें सहायक हुआ है। पहले मामुलिया फिर सुअटा और उसके बाद टेसू। दूसरे मामुलिया और सुअटा क्वांरी लड़कियां ही खेती हैं। इस कारण भी जुड़ाव हुआ है।

cUnyh ykd uR; jkb

यह समग्र वैष्णवीवाद को प्रभावित करते है, गणेश सिद्धि और लक्ष्मी संपत्ति के देव है, महाराष्ट्र, गुजरात और सौराष्ट्र में विशेष प्रभाव है, समस्त भारत के हृदयस्थल के रूप में बुंदेलखंड है यहॉ की उत्सव धर्मिता अत्यंत सघन है। यहा पर विदेशी प्रभाव भी अत्याधिक नहीं पड़े है अतः प्रत्येक त्यौहार में भक्ति भक्ति का प्राचुर्य मिलता है। लोक गीतों में भी इस से छुटकारा नहीं देखा गया। प्रेम के गीत हो या

घृणा की भावना कोई ना कोई पौराणिक चरित्र के ब्याज से अपनी बीतें कर दी जाती है। लोक नृत्य में तो इसका अतिरेक मिलता है इसीलिए मनोरंजन के प्रसंग में भी पौराणिक चरित्र के ब्याज से बातें कही सुनी जाती है। राई जैसे लोक नृत्य के बारे में जब बुंदेलखंड के रसिक ग्रामीण से पूछा गया तो सीधी सादी बोली में उसने राई का सार इस प्रकार व्यक्त कर दिया।

टिमकी मृदंग बजे, घुंघरू के बोल सजे
रेशम की डोरी, चढ़के गोरी रस छलकाये
कर गागर कोरी

कहने का तात्यपर्य यह है कि राई जन मनोरंजन की ऐसी सतरंगी सरगम है जिससे नृत्य संगीत अभिनय और शौर्य प्रदर्शन की पवन गंगा बहती है।

लोक शब्द एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त किये गए यह मानव समाज की ओर इशारा करता है स्पष्ट है, की लोकनृत्य एक सर्वसाधारण की कला है जो लोक में इसलिए प्रवाहमान है क्योंकि पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही परंपरा से जुड़ी चली आती है, इसमें निहित मत विचार श्रद्धा और शिष्टाचार इतने अपरिवर्तनशील है की उनकी अंतः धारा में बार–बार दोहराने पर भी कोई परिवर्तन नहीं होता उलटे युग में परिस्थितिगत अपेक्षाओं के अनुसार थोड़ा बदलाव होता है, यह एक प्रकार से परिष्कार ही लाता है, लोक नृत्य में जन समाज की स्थानीय और जातीय विशेषताऐं लक्षित होती है। यहॉ ध्यान देने की बात है की लोक का संगीत भी इससे जुड़ा होता है जो समाज की ऐसी सहज आवाश्यकता है जिसका सामाजिक उत्सव, त्यौहारों, रीति–रिवाजों संस्कारों और मानसिक कार्यो हेतु प्रयोग होता है यह तथाकथित शिष्ट समाज या वातावरण से बहुत दूर होता है। भले ही इस संगीत से शास्त्रीय संगीत को संवारने में सहायता मिलती है।

लोक नृत्य और लोक संगीत एक दूसरे के अनुपूरक है इनमें से एक आभाव में दूसरे का प्रभावी होना कठिन हो जाता है, अतः यह विश्वास किया जाता है कि लोकनृत्य और लोक संगीत दोनों का उद्भव और विकास लगभग साथ ही साथ हुआ है। ऐसा माना जाता है कि

आनंद के उद्‌वेग में जब शारीरिक अंग संचालनों का आधिक्य होता है तो नृत्य की भंगिमा प्रारंभ हो जाती है। अनेक विद्वानों ने यह माना है कि कला आनंद की ही अभिव्यक्ति है कोई कोई तो पूरी सृष्टि को नृत्यमय मानते है जो समस्त चेतन और अचेतन इसमें भाग लेते है। लय प्रकृति का स्वाभाव है इसे हमारे ऋषियों ने भी बहुत पहले ही मान लिया था जिसका प्रथम साक्ष्य उन्होंने शिव के ताण्डव नृत्य में बताया है। यह नृत्य ऊर्जा का प्रतीक है इसलिए शिव ऊर्जा के प्रतीक है जैसे मंडलाकार नृत्य आकाश में चलने वाले नक्षत्र की अनुकृति है उसी प्रकार लोक नृत्य राई भी पूर्ण मंडलाकार में होता है। वास्तव में राई एक कलात्मक नृत्य है अनुष्ठानिक भी है परंतु पौराणिक परिवेश जुड़ा होने पर भी एक लम्बे अंतराल के कारण अपने मूल रूप में नहीं रह पाया। आज राई का मनोरंजनात्मक श्रृंगारिक रूप ही लोक में रह गया है।

लोक नृत्य राई के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करते हुये उसे एक नृत्य नाट्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है लोक नृत्य राई रातभर होता है, नर्तकी और सौबत को अवकाष देने के लिए राई के मध्य स्वांग का आयोजन किया जाता है यह स्वांग व्यंगात्मक तो होते ही है साथ ही साथ स्थानीयता लिए हुए होते हैं। नाटक की तुलना में इनमे ना तो कोई मंच होता है। ना तो वेशभूषा पर विशेष ध्यान दिया जाता है और न ही संवाद और भाषा का बंधन होता है। स्वांग गीत गाये भी जाते है जो राई में प्रारंभिक आलाप तोरा की पंक्ति के बाद दोहे या द्विगपंक्तियों के रूप में गाए जाते है फिर सवैया या राई गीत फागें प्रस्तुत की जाती है। राई नृत्य जैसे कलात्मक नृत्य को कलात्मक ही रखने की प्रवृत्ति बनायीं जाती है। मनुष्य ने कृषि के साथ–साथ आपदाओं और नैसर्गिक अनुभूतियों का माध्यम नृत्य को बनाया है। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में नृत्यों की प्राचीनता का उल्लेख मिलता है इस सब का आधार लोकाभिरूचि है। नृत्य का कोई इतिहास नहीं मिलता वैदिककाल के पहले ही लोक नृत्य जीवन में अभिन्न अंग बन चुके थे वैदिक काल तो भारत के सांस्कृतिक जीवन का आदर्श युग है इसमें गीत वाद्य और नृत्य के जैसा अस्तित्व पाया जाता है यह संसार की अन्य संस्कृतिक जीवन का आदर्श युग है, इसमें गीत वाद्य और नृत्य के जैसा अस्तित्व पाया जाता है यह संसार की अन्य संस्कृतियों में नहीं मिलता। हमारें वेदों में बसंतोत्सव आदि का उल्लेख मिलता है जैसा की ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अर्थववेद मे गन्धर्व और अप्सराओं के नृत्य की प्रभूत चर्चा सामाजिक जीवन और सामूहिक नृत्य में विशेषताओं को प्रदर्शित करती है, नृत्य और नर्तक दोनों का उल्लेख मिलता है। इन नृत्यों में छोटे बडे अमीर गरीब का कोई भेदभाव का कारण नहीं मिलता। उत्सवों में स्त्री–पुरुष का संयुक्त नृत्य में सब लोग तन्मय होकर नाचते थे। पूर्व कालों में भी हमारे लोक नृत्यों की परंपरा विद्यमान थी। लौकिक परम्पराओं की सुरक्षा पुत्र जन्म विवाहोत्सव अथवा अभिनन्दन समारोहों में लोक नृत्य का चलन था।

राई मूलतः लोक नृत्य है जो बसंतोत्सव से जुड़ा रहा है और आज भी बसंतोत्सव से लेकर वैशाख पूर्णिमा तक राई की धूम रहती है। रबी की फसल और फाग का प्रमुख नृत्य होने के कारण उसकी प्राचीनता में कोई संदेह नही है। चंदेल नरेश मदनबर्मन 29–65 ई. के समय मनाये जाने वाले बसंतोत्सव का वर्णन जिन मंण्डन के कुमारपाल प्रबंध में मिलता है। रूपकार वसंतराज ने भी चंदेल नरेश परमार्दिदेव और त्रैलोक्यवर्मन के कार्यकाल में बसंतोत्सव का चित्रण किया है। उनके प्रहसन हास्य चूड़ामणि का अभिनय तो बसंत ऋतु में हुआ था। स्पष्ट है कि यह लोकनृत्य 12वीं सदी के पूर्व से लेकर 12वीं सदी तक प्रचलित था जो अभी तक प्रचलन में है। लोकनृत्य राई आदिकाल से चंदेलकाल में भी केवल यही लोकनृत्य ही रहा है परंतु जैसे ही वीरवर्मन 1245–82ई. की मृत्यु हुई चंदेल राज्य के टुकडे–टुकडे हो गए और छोटी–छोटी जागीरों में यह नृत्य मनोरंजन का प्रमुख साधन बन गया। बुंदेलखंड में यह स्थिति लगभग 200 वर्ष तक रही। स्वाभाविक है की सामन्ती और जागीरदारों के मनोविनोद में विशुद्ध कलात्मकता की उतनी जरूरत नही थी जितनी मसखरी और संवाद की इस कारण राई लोक नृत्य में लोक नर्तिकाओं की संख्या बड़ी और विदूषक एक दो पुरुष जैसे पात्र भी इसमें सम्मलित होते रहे। राई में अभिनय शामिल हो गया और लोकनृत्य एवं लोकनाट्य दोनों रूपों में प्रचलित हुआ। इस प्रकार 15 वीं सदी से लगातार लोक नृत्य के साथा साथ लोक नाट्य भी निरंतर गतिशील रहा है। ना तो इस प्रदेश में कोई साम्राज्य स्थापित हुआ और ना राई का तार टूटा। राई नृत्य में नर्तकी का घूंघट डालना और हाथ में रूमाल लेकर संकेतात्मक अभिनय करना मध्ययुग की ही देन है।

इसी प्रकार राजस्थान के लोकनाट्य गबरी गौरी की नर्तकियों को राई कहा जाता है यहाॅ तक की गबरी का नाम राई भी प्रचलित है। इससे प्रकट है की गबरी भी पहले लोक नृत्य रहा है और कालांतर में लोकनाट्य के रूप में विकसित हुआ। राई लोकनाट्य की अभिनेत्री और नर्तकी बेड़नी, बेडिया जाति का उद्बोधन करता है। यह लोक नृत्य जहाॅ जनता में प्रिय है वहां राजा के सामन्तों, जागीरदारों, ठाकुरों आदि मध्य युग के उच्च वर्गों में प्रचलन में रहा है। उसका सर्वाधिक उत्कर्ष 19वीं शती में रहा है उच्च वर्ग के विनोद और विलासिता का साधन बनने से ही वह व्यावसायिक हुआ है और इसीलिए उसका मंचन चाहे जनता के बीच होना ही चाहे जमींदार की हवेली में बेडनी को पहले साई (बयाना) दिया जाता है।

मध्ययुग में राई का मंच या तो बिल्कुल सादा खुला हुआ होता था या फिर हवेली के भीतर सजा संवरा। सादे मंच के किसी भी बड़े मैदान के बीच स्वच्छ टुकड़े को रस्सी से घेर दिया जाता था और उस घेरे के भीतर एक तरफ गायक और वादक दल खड़े रहते हैं जिनके पीछे नगड़िया सेंकने के लिए अलाव या कंडे में आग सुलगती रहती है। तो बांकी तीन तरफ लोक नृत्य के लिए खाली रहता है। रोशनी के लिए पलीते जलाये जाते है राई नृत्य में मृदंग वादक व बेडनी के बीच एक मुकाबला चलता रहता है जो पूरी रात देखने को मिलता है उसी के लिए दर्शक पूरी रात यह सोचता रहता है की नर्तकी का नृत्य श्रेष्ठ है या मृदंग वादक का वादन दोनों की होड़ के साथ–साथ यह नृत्य भोर होते ही समापन की ओर चला जाता है।

मृदंग का उल्लेख भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में भी आता है मृदंग लोक वाद्यों में सर्वाधिक प्राचीन लोक वाद्य है लोक संगीत में आज भी मृदंग अपने वैभव एवं प्राचीन पहचान के साथ विद्यमान है। बुंदेलखंड मध्यप्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में मृदंग का प्रयोग लोक नृत्य में किया जाता है। बुंदेलखंड के राई नर्तक मृदंगवादन में अपनी सानी रखते है। प्रारंभिक काल में मृदंग का निर्माण मृदा अर्थात मिट्टी से होता था किंतु कालांतर में मृदंग का स्वरूप एक नए रूप में विकसित हुआ और उसका खोल मिट्टी के स्थान पर लकड़ी का खोल बनाया जाने लगा। आज पूरे बुंदेलखंड मध्य प्रदेश में चहुँओर मृदंग का खोल लकड़ी से बना ही पाया जाता है यह खोल आम बीजा या शीशम की लकड़ी से बनाया जाता है। मृदंग वादकों एवं विशेषज्ञों से ये ज्ञात हुआ है की इन्हीं तीनों वृक्षों की लकड़ी ही मृदंग के खोल के लिए सर्वोत्तम टिकाऊ एवं गुणकारी मानी गयी है। मृदंग के निर्माण की ढोलक के समान ही है अंतर केवल इतना है ढोलक में धातु के छल्ले सरद में लगाये जाते है जबकि मृदंग की सरद में लकड़ी के आयताकार छोटे ठिम्मे गुटके लगाये जाते है यह गुटके गद सिरे की ओर होते है। तथा मृदंग के आवश्यक सुर–ताल निश्चित करने के लिए इन ठिम्मों को वादकगण तत्कालिक उपलब्ध किसी ठोस वस्तु से ठीक लेते है। मृदंग में भी ताली और गद होते है किन्तु मृदंग के गद से स्वर निकालने की विशेषता यह है कि इसके गद से आटा का लौंदा चिपकाया जाता है जिससे गंभीर आवाज़ निकलती है। ताली मे तबले जैसी स्याही लगायी जाती है मृदंग का आकार ढोलक से भिन्न होता है। यह गद की और मोटा और ताली की ओक क्रमशः पतला होता जाता है। सरदे लगायीं जातीं है। इसे कमर में बांध कर दोनों हाथों की हथेली और उंगलियों से बजाया जाता है। वादक मृदंग में बहुरंगी झालर से मृदंग को सजाता है। सजाने का यह कार्य केवल बुंदेलखंड में अधिक पाया जाता है।

यहाँ पर ढोलक में भी ऐसी सुन्दर झालर लगते है। वास्तव में लोक कलाकारों की ही यह सुन्दर सूझ है। इस नृत्य में मंजीरा झांझ या तारें अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है इन्हें प्रायः सहवाद्य के रूप में ही उपयोग किया जाता है इनका तीखा स्वर अन्य लोक वाद्यों के मिश्रित स्वरों में भराव का कार्य करता है। गाँवों में रात्रि के सन्नाटे में झांझ मंजीरा बजते है तो इनकी आवाज़ मीलों दूर तक सुनाई पड़ती है।

मंजीरा पीतल या कांसे की धातु से बनाये जाते है। वास्तव में ये दो वाद्य शुद्ध पीतल या कांसा धातु से नहीं बनाये जाते है बल्कि कांसा, पीतल की मात्रा अधिकाधिक रखकर इन धातुओं में जस्ता, तांबा आदि की न्यून मात्रा भी मिश्रित की जाती है। मिश्रित धातु एवं नाद के कारण ही इनसे मीठा स्वर निकलता है। इनका निर्माण ताम्रकार जाती के लोग और कसेरा जाती के लोग करते है इनका आकार छोटे–छोटे

गोलाकार में होता है किंतु इनका सामान्य गोलाकार आकार होता है। लोक नृत्य राई में रमतूला तुरई ढपला चंग टिमकी का विशेष महत्तव होता है।

लोक नृत्य राई में टिमकी नगड़िया को राई नृत्य की मौडी कहा जाता है। यह कुम्हारों द्वारा मिट्टी का कोंढा धारा बना करा आग में पकाया जाता है उसकों पूर्ण पकने के बाद बसोर जाति धानक जाति के द्वारा उस पर भैंस या पड़े का चमड़ा पका कर चढ़ाया जाता है। और उसे चमड़े के छोटे–छोटे तनों सरदों को पूरे घारे पर मकड़ी के जाल के समान बुना जाता है इसके चमड़े बुनाई और घारे पर इसके स्वर का निर्धारण होता है इनका आकर गोलाकर होता है जिसका व्यास लगभग 12–14 इंच होता है जो खेर या शीशम की लकड़ी के पतले डंडो से बजायी जाती है डंडो की

लम्बाई 12–14 इंच तक की होती है। इनकी मोटाई अंगूठे के बराबर होती है। इसके साथ–साथ राई लोकनृत्य में अलगोजा का वादन भी होता है बुंदेलखंड मध्यप्रदेश में विभिन्न क्षेत्रों व अंचलों बॉसुरी के अपने अलग–अलग नाम होते जिनमें कुछ विविधता और विशेषताएं भी है जैसे मंडला सिवनी में जोड़ा बॉसुरी अहीरी, बॉसुरी, मुरली जबलपुर में बंसी बॉसुरी बस्तर में, माडिया

बॉसुरी बेतूल, होशंगाबाद, भूगडू, पवी या पवई धार–झाबुआ में पावला, पावली, रोहली, सुकटा–सुकटी बहली बघेलखंड में बॉसुरी बंसी मालवा निमाड़ में बंसी बंसरी बुंदेलखंड में बंसी बरेदी बॉसुरी अलगोला नाम से जाना जाता है। दो समान खड़ी बॉसुरियों को वादन की परंपरा पायी जाती है। बॉसुरी के समान इस लोकवाद्य से भी गीत के बोल निकले जाते है। चूँकि दो बॉसुरियों एक साथ बजती है अतः बॉसुरी से भिन्नता लिए हुए सुरीले सुर अलगोजा से निकलते है। अधिकतर देखा जाता है कि अलगोजा वादक बाजार में बिकने वाली दो समान बॉसुरियों को खरीदते है तथा उन्हें अलगोजा का स्वरूप स्वयं प्रदान करते है। अपनी रूचि के अनुसार अलगोजों को सुन्दरता पूर्वक फुंदरा आदि से सजाते है। नीचे के हिस्से को एक दूसरे से ढीलदार रस्सी फुंदना या झालर से बांध देते है। इसका वादन एकल एवं सामूहिक गीतों में किया जाता है।

mRifRr %&

राई नृत्य की नर्तकी बेडनी समाज की स़्री होती है इस समाज की उत्पत्ति के पर्व हमें वेश्याओं के क्रमिक विकास पर ध्यान देना आवश्यक होगा। हमें अपने वेद पुराण रामायण, महाभारत के अध्ययन करने पर वेश्याओं की उत्पत्ति का आभास होता है।

पुराणों में अप्सराओं यथा मेनका रंभा उर्वशी आदि के नृत्यों एवं कृत्यों पर विस्तार से वर्णन हुआ है। इन अप्सराओं का काम नृत्य कर मनोरंजन प्रदान ही नहीं अपितु ये अपने रूपजाल में फंसाकर किसी को भी पथभ्रष्ट करने का काम भी किया करती थीं। वेश्याओं का प्रयोग शत्रुओं को परास्त करने हेतु होता था, जिसमें विषकन्याओं का पर्याप्त वर्णन किया गया है। चाणक्य ने वेश्याओं को क्षति पहुॅचाने पर दंड देने तथा वेश्याओं की दरें निर्धारित करने संबंधी नियम बनाये थे। वेश्याओं को साधारण बोल–चाल में कंजरी, गणिका आदि नामों से भले ही संबोधित किया जा रहा है अथवा उन्हे नीची नजरों से देखा जा रहा हो किन्तु प्राचीनकाल में उन्हें नगरबधुओं और जनपद कल्याणी होने का गौरव प्राप्त था। उनके प्रसादों में अमीर उमराव ही नही सम्राट तक पधारते थे तथा दरबार में उनका सम्मान भी होता था।

आम्रपाली, चित्रलेखा, मदनमाला, पिंगला, वासवदत्ता, गुणवती, सहगा और रूपाणिका आदि कुछ इतिहास प्रसिद्ध वेश्यायें हुई है जिनके कारण कभी भीषण युद्ध

हुए, तो कभी तलवारें म्यान में ही समा गई। वेश्याओं के जीवन पर अश्वघोष, कालीदास, मानहर्ष तथा भवभूपति ने ही नहीं वरन रविन्द्रनाथ टैगोर, मुंशी प्रेमचद्र, आचार्य चतुरसेन, भगवती वर्मा, अमृतलाल नागर, यशपाल सहादत हसन हस्मत वंशज बेडियो या कोल्हासी कहलाए। ये परम्परागत रूप से घुमक्कड और लुटेरे थें ये चटाई की झोपडियों में अथवा तंबुओं में रहते थे। ये हिन्दु अथवा मुसलमान कुछ भी हो सकते थे। ये जिनके बीच में रहते उन्ही के धर्म को अपना लेते । इसलिए कुछ बेडिया द्विधर्मा कुछ कबीरपंथी या सिख हुए तो कुछ पंचपीर समुदाय के।

साक्षात्कार में ही कुछ बेड़नियों ने अपने समाज की उत्पत्ति के विषय में बताया कि हम गंधर्व जाति के है और हमारी उत्पत्ति स्वर्गिक अप्सरा रंभा से हुई थी हम रंभा की ही संतान है। वर्तमान में यह समाज मध्य प्रदेश के सोलह जिलों में तथा देश के कई राज्य में अलग–अलग नामों से स्थापित है।

flj<dk – एक साक्षात्कार मे ज्ञानसिंह बुंदेला जी कहते है कि एक बेडिया परिवार सर्वप्रथम राजस्थान तरफ से आया था। उसमें पति–पत्नि, एक–दो लड़की थी। इस परिवार की स्त्रियां बोनी के समय खेतों–खेतों जमकर नृत्य करती थीं इनके नृत्य से खुश होकर किसान इन्हें अनाज देते। इसी प्रकार कटनी के समय भी खेतों पर जाकर अनाज एकत्रित करती थीं। धीरे धीरे इनके द्वारा किया जाने वाला नृत्य लोगों को पंसद आने लगा और इनकी ख्याति फैलने लगी। इनका परिवार भैंसा के ही एक मालगुजार ने मुगरयाऊ नामक स्थान पर बसा दिया। बेड़िया परिवार के पुरुष शुरू से ही आकृमक रहे है। पूर्व में तो गांव के मुखिया ही इन्हें बुलाते थे अब सामान्य लोग भी खुशी के मौकों पर इनके नृत्य करवाने लगे। पहले नर्तकी के साथ कोई सौबत नहीं होती थी धीरे धीरे गांव की सौबत इनसे जुड़ने लगी और नृत्य का वह रूप अब राई नृत्य के रूप में विख्यात हुआ। इस प्रकार से इनका समा बढ़ता गया और नृत्य परिष्कृत होता गया। नर्तकी सुन्दर होती थी और इनका नृत्य मनमोहक होता था इसलिए माल–गुजारों का ध्यान नर्तकी पर स्थिर होने लगा। इस प्रकार बेड़िया समाज में सिरढ़का नाम की प्रथा का सूत्रपात हुआ।

jkbl %& i"BHkfe

राई ऐसा आनुष्ठानिक एवं मनोरंजन प्रधान लोकनृत्य व लोकनाट्य है, जिसकी अपनी परम्परा है। यह भारत वर्ष के सभी लोकनृत्यों की भांति अपनी उत्पत्ति के लिए शिव और शक्ति की कथाओं से जोड़ा जाता है।

राई राजस्थान और मध्यप्रदेश में इसी नाम और कम या अधिक रूप में शिव और शक्ति के नृत्य विलास का ही प्रदर्शन है। राजस्थान में भील, कंजर, मीणा और बंजारा, बेड़िया आदि जातियों की देवी शक्ति ही है। नाम बदल जाते हैं पर सबका मूल मोटिव एक है। बेड़िया मध्यप्रदेश में पश्चिमी और दक्षिणी राजस्थान से आकर बस गये। मूलरूप में यह उनका ही आनुष्ठानिक नृत्य है, बाद में मनोरंजन प्रधान हो गया। इस कारण से इसकी जड़ें राजस्थान में आधिक हैं। अतः सर्वप्रथम राजस्थान की राई का अवलोकन आवश्यक है।

jktLFkku dh jkbl %&

मध्यप्रदेश का उत्तरी भाग राजस्थान के नाम से अभिहित होता है। राजस्थान की साहित्यिक परम्परा अत्यंत प्राचीन है। लोक संस्कृति का आधार वहां के लोकनाट्य हैं। डॉ. महेन्द्र भानावत ने इनके अनेक प्रकार माने हैं। उनके अनुसार ये कुल 42 विविध रूपों में मिलते हैं, परन्तु उन्होंने इनका वर्गीकरण ख्याल, स्वांग और लीलाओं में किया है। बुन्देलखण्ड का पश्चिमी हिस्सा राजस्थान की सीमा को छूता है। लोकनृत्यों और नाट्यों का आदान–प्रदान होता रहता है। ख्याल, स्वांग, लीलाओं में बुन्देलखण्ड में स्वांग और राई का आंशिक प्रभाव पड़ता है। स्वांग बुन्देलखण्ड में वैसे नामों से नहीं खेले जाते जैसे राजस्थान में प्रसिद्ध है। यहां गबरीनृत्य और स्वांग आशा से अधिक परिवर्तित हो गये हैं, इसलिए इनको अपने मौलिक रूप में ही प्रस्तुत करना होगा, क्योंकि राजस्थान का न तो भाषायी प्रभाव दिखता है और न खेले जाने वाले समूहों या दलों का कोई नाम ये धारण करते हैं। इसी दृष्टि से राजस्थानी परम्परा को बुन्देली परम्परा के साथ मिलाकर देखने से दोनों भू–भागों की संस्कृति का अंतर भली–भांति समझ में आ जाता है।

राजस्थान में गबरी लोकनाट्य के उद्भव और विकास की अपनी परम्परा है। यह एक संयोग ही है कि गबरी नृत्य में राई–राइयों का विशेष आधार होता है। यहां बुन्देलखण्ड में गौरा या गबरी ही स्वयं राई होती है। अंतर केवल इतना है कि यहां राई भील नहीं करते, बल्कि बेड़िया जाति की नर्तकियां करती हैं और ये जाति अपने मूल रूप में आपराधिक वृत्तियों की जाति उसी प्रकार मानी जाती थी, जैसे राजस्थान में भील, मीणा, कंजर, किसविन आदि माने जाते हैं। मध्यप्रदेश में भी इन जातियों के लोग आये हैं, वे पश्चिमी मध्यप्रदेश तक ही सीमित रह गये। इसलिए यह कहा जा सकता है कि बुन्देलखण्ड की राई का आधार बेड़िया जाति तो है, पर यह अधिक से अधिक 400 वर्षों से अधिक पुराना इतिहास नहीं रखती। राजस्थान में भीली संस्कृति की क्षेत्र विशेष में अधिक प्रधानता रही है। गबरी भीलों की प्रमुख देवी मानी जाती है। उन्हीं को प्रसन्न करने के लिए प्रति तीसरे वर्ष गबरी को लोक सामूहिक रूप में संगठित होकर मान्यता का अनुष्ठान लेते हैं। यहां गबरी का प्रारम्भ रक्षाबंधन के बाद आने वाली ठंड राखी से प्रारम्भ होता है और सवा महीने तक चलता है। इसके पीछे एक मोटिव होता है जो जातीय संगठन फसल की सुरक्षा, गांवों की खुशहाली, अकाल और अनेक व्याधियों से छुटकारा पाने का होता है। इसमें भीलों की संस्कृति तो प्रदर्शित होती ही है, साथ ही लोक जीवन के विविध रूप भी सामने आते हैं। गबरी के साथ स्वांग का भी प्रदर्शन होता है, जो सामाजिक विरूपताओं और असंगतियों का पर्दाफाश करते हैं। इसी मनोरंजन के तत्व का समावेश होता है।

बुन्देलखण्ड में मान्यता के रूप में राई का आयोजन होता है, क्योंकि यह केवल मनोरंजनार्थ ही की जाती है।

mnHko vkj fodkl %&

उद्‌भव और विकास की दृष्टि से गबरी का मूलाधार शिव तथा भस्मासुर की कथा माना जाता है। कथा बहुत छोटी है, शिवजी को तपस्वी होने के कारण शमशान की भस्मी प्रसाधन के रूप में आवश्यक होती थी, इसलिए उन्होंने एक ऐसा राक्षस पैदा किया जो उनका यह काम नियमित रूप से कर सके। उसे एक वरदान भी दे दिया कि वह जिस पर हाथ रखेगा, वह भस्म हो जायेगा और उस भस्म को शिवजी को भेंट कर देगा। एक दिन भस्मासुर को प्रमाद आ गया। उसने शिवजी की तपस्या की जिसके फलस्वरूप एक कड़ा प्राप्त किया, यह कड़ा भस्मी कड़ा बन गया और इसी से भस्मासुर ने शिवजी को भस्म करना चाहा। अपने को संकट में देखकर शिवजी ने विष्णु से सहायता मांगी। विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण करके भस्मासुर को नृत्य करने में ऐसा व्यस्त किया कि उसका कड़ा उसके सिर पर आ गया और वह भस्म हो गया। भस्मासुर चतुर था, मरते–मरते उसने एक वरदान मांगा कि वह किसी प्रकार अमर रहे। उसकी स्मृति के लिए गबरी नृत्य का आयोजन प्रारम्भ हुआ। यह कथा बुन्देलखण्ड में भी विभिन्न पुराणों से आई, परन्तु इसका धार्मिक रूप नहीं चल पाया। पुराणों में भस्मासुर के स्थान पर बकासुर का नाम आता है। कथा का रूप किंचित बदल जाता है। बकासुर तीनों लोकों में उत्पात मचाते हुए शिवजी को भस्म करके पार्वती का अपहरण करने का मंत्र भी बनता है। यहां विष्णु मोहिनी का रूप धारण करके अपने कटाक्षों से मोहित करते हैं और नृत्य में लगा देते हैं, बकासुर को भी भस्मासुर जैसा वरदान प्राप्त था और यही वृकासुर भस्मासुर कहलाता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भस्मासुर हो या बकासुर कथा के मूल में धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मोटिव अंतर्निहित है। लोक में इसे अनेक रूप दे दिये गये। गबरी नाट्‌य के पीछे राजस्थान की अनेक लोक कथायें भी प्रसिद्ध हैं, जो प्रत्यक्षतः और प्रकारांतर सो शिव–पार्वती के भोले रूप और वरदान तक पहुंच जाती हैं।

लोकनाट्‌यों और नृत्यों का प्रमुख मोटिव मनोरंजन के साथ–साथ जनजीवन के स्वस्थ रूप में चित्रित करने का होता है। राजस्थान में गबरी लोकनाट्‌य अधिक है इसलिए इसमें पात्रों की संख्या भी अधिक होती है।

डॉ. भानावत के अनुसार ये पात्र 4 प्रकार के होते हैं – देवपात्र, मानवपात्र, दानवपात्र और पशुपात्र। गबरी के देवपात्र के रूप में शिव–पार्वती प्रमुख हैं। पार्वती का एक रूप कालका का होता है, जिसमें दानव पात्र की कथा सदैव जुड़ी रहती है, शिव और पार्वती लोकनृत्य में पृथ्वी लोक पर आते हैं और आलौकिक शक्ति सम्पन्न होने के कारण संभव को असंभव और असंभव को संभव बना देते हैं। यहीं देवपात्रों का प्रदेय होता है और इन्हीं से सुखांत की कामना की जाती है।

मानव पात्रों में 24 तक पात्र हो जाते हैं, प्रत्येक पात्र का अपना एक गुण होता है। ये पात्र बुढ़िया, राई, कुटकड़िया, कंजर, कंजरी, मीणा, नट, खेतुढ़ी, कालबेलिया, पाइया, बाणियां, जोगी, गरड़ा, कानगुजरी, कालूकीर, बंजारा, शकलीगर, भोपा, वनवारी, गोमा, बांझड़ी, फन्ता–फन्ती, बगली, देवर–भौजाई आदि इन पात्रों से एक विशेष चरित्र और क्रियात्मक गीत मिलता है, जिसके प्रस्तुति से गबरी की प्रभावान्विति बनती है और समाज का चित्रण होता है। जहां तक पशुपात्रों की बात है वे दोनों प्रकार के होते हैं जैसे सुअर, रीछड़ी, नाहर आदि इन पात्रों के साथ भी कोई कथा जुड़ी होती है। ये पात्र गबरी के एक खेल के केन्द्र होते हैं। राजस्थान में गबरी का उद्देश्य पहले धार्मिक था, क्रमशः यह मनोरंजनार्थ अधिक हुआ और फिर व्यावसायिक होता गया। चूंकि गबरी संगीत प्रधान है, इसलिए इसमें अभिनय और नृत्य की रीढ़ गीत होते हैं। इन गीतों में भी संवाद प्रस्तुत किये जाते हैं। गबरी के मध्य में स्वांगों का विधान होता है, ये स्वांग शंकर्या गीत पर किया जाता है।

गबरी नृत्य लोक संस्कृति, लोकजीवन के रहन–सहन, आचार–विचार, क्रियाकर्म, रूढ़ी विश्वास, जीवन–दर्शन और सांस्कृतिक आदर्शों से ओत–प्रोत होता है, इसलिए गबरी की समस्त संरचना एक निश्चित आधार पर एक निश्चित मोटिव के साथ होती है। भीलों का यह नाट्य यद्यपि ऐसे लोगों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जिनकी पृष्ठभूमि असांस्कृतिक या अपराधपरक रही है। इनसे यह कार्य करवाकर लोकजीवन में प्रेम, ममता, करुणा, सौहार्द, वात्सल्य, स्नेह, त्याग आदि भावनाओं को जागृत करके उन्हें व्यावहारिक जीवन में प्रस्तुत करने को प्रेरित किया जाता है। गबरी के स्वांग की नकल पर अन्य प्रदेशों में भी स्वांग की संरचना होती रही है। कुल

मिलाकर यह कहा जा सकता है कि गबरी नृत्य नाट्य केवल क्षेत्रीय आधार पर नहीं वरन् समस्त हिन्दी प्रदेश को प्रभावित करने वाला सिद्ध हुआ है।

उत्तर मध्ययुग तक देश में धर्म के नाम पर एक छद्म अपराधी संप्रदाय प्रच्छन्न रूप में उठ खड़ा हुआ, जिसमें पूर्व से पश्चिम तक तथा उत्तर से दक्षिण तक किसी न किसी माध्यम से जनसंचार करने का लक्षण बनाया। इस सम्प्रदाय में अधिकांश जिप्सी वर्ग की जातियां, जनजातियां दीक्षित होती रहीं। राजस्थान में मीणा, कंजर, किसबिन, बेड़िया, भील, शबर, गौंड़ आदि वर्ग से स्त्री, पुरुष इस सम्प्रदाय के सहायक बने।

कालक्रम इसकी प्रगति नहीं आंकी जा सकती है, पर इस संप्रदाय के द्वारा होने वाले नुकसान बहुत अधिक हैं। इस संप्रदाय का जन्म मध्यपूर्व में हुआ था। संक्षेप में इसका इतिहास यहां इसलिये बताना आवश्यक है क्योंकि इस वर्ग के उन्मूलन के साथ इसमें लीन जातियों की लड़कियों को अपनी अप्रतिम सुन्दरता, शारीरिक संघटन, अद्म्य उत्साह, निर्भीकता, मानसिक और कायिक ऊर्जा के कारण तत्कालीन सामंतों ने अपनाने की चेष्टा की, जो बाद में बहुत बड़ी सामाजिक विच्छिन्नता का कारण बनी। यह विच्छिन्नता अंग्रेजी साम्राज्य में बढ़ती ही गई और भारत के स्वतंत्र होते–होते एक अभिशॉप में परिणित हो गई।

मुगलकाल में राज परिवारों में प्रभावशाली व्यक्ति को मंच से हटाने के लिए दो तरीके अपनाये जाते थे। एक तो यह कि अधिक प्रशंसा करके उन्हें निकम्मा बनाया जाता था, दूसरा यह था कि षड्यंत्र को सफल बनाने के लिए ऐसे लोगों को चुपचाप नियुक्त किया जाता था, जो छद्मवेशी होते थे और मंच से हटाये जाने वाले व्यक्ति को नियत समय पर नेस्तनाबूत कर देते थे। ईरान में इसका प्रारम्भ हसन नाम के व्यक्ति से विशेष रूप से माना जाता है। वह बहुत ही महत्वाकांक्षी था, अपने कर्त्तव्यों के कारण मुल्क का मंत्री बन गया। सुल्तान को उसकी नियत पर शक हो गया और उसने उसे बाहर निकाल दिया। हसन ने स्वयं को ईश्वर का अवतार बताया और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को गुप्त रूप से मारने के लिए ईश्वर का कार्य और स्वर्ग की प्राप्ति बताया। हसन के अनुयायी भारत में बड़ी संख्या में गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि में पाये जाते हैं, वैसे तो ये मुसलमान सियापंथी मुसलमान

होते हैं, पर इनमें हिन्दुओं से मुसलमान परिवर्तित होने वाले व्यक्तियों की संख्या अधिक है। इसलिए हिन्दुओं के रीति–रिवाज भी मिलते हैं।

इनसे वे लोग भी जुड़े थे जो देवी काली की उपासना करने वाले जनजाति के लोग थे। उनमें चाहे राजस्थान हो या मध्यप्रदेश, गुजराज हो या महाराष्ट्र विशेषकर या तो घुमंतू जातियां इस प्रकार की उपासना करती हैं अथवा अपराधी वृत्ति वाली जातियां देवी को अपना इष्ट मानती हैं। राजस्थान का गबरी नृत्य भी प्रकारान्तर से शक्ति की उपासना का नृत्य माना जाता है।

वर्तमान में राई का स्वरूप अत्यन्त अधूरा है, क्योंकि इसमें अन्य लोकगीतों की भांति शक्तिपूजा, गणेशपूजा, महेशपूजा आदि सब तो हैं, पर इन सबका कोई संदर्भ सामने नहीं आता है। लोक इसे अन्य लोकनृत्यों की भांति इसलिए प्रारम्भ करे हैं, जिससे कि नृत्य निर्विघ्न समाप्त हो और जनरंजन अच्छी तरह से हो सके। मेरे विचार से मूल राई को पौराणिक काल के बाद प्रचलित रहने का अवसर नहीं मिला, क्योंकि मूल राई एक अनुष्ठान के साथ–साथ जनरंजन के लिए केवल श्रृंगार को ही प्रस्तुत नहीं करतीं थी। उसके पीछे एक मोटिव होता था जो विनोद के साथ–साथ एक संदेश भी देता था। राई को परिस्थितियों ने तोड़ दिया, क्योंकि देश में छोटे–छोटे राज्यों में युद्ध हुए। एक राजा नो दूसरे राजा को परास्त करने में अपनी समस्त शक्ति झोंक दी। युद्धों के बाद युद्ध होते थे। कलात्मक और अनुष्ठानात्मक कलारूपों को प्रदर्शित या अभिव्यक्त नहीं किया जा सका, इसलिए आधा जैसे लोकगाथा काव्य में यदि नृत्य की चर्चा आयी है तो वह केवल इतनी ही – नचे कंचनी तेहि भवना बामे। इससे ज्यादा वैभव की बात बारहवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के अंत तक किसी काव्य ग्रंथ में नहीं मिलती है। यह वह समय था, जब अपभ्रंश में अनेक महाकाव्य लिखे गये। उनमें श्री नृत्य का नाम भर आया। राई नृत्य स्वतंत्र रूप में बुन्देलखण्ड की भूमि पर ही बचा रहा है जिसे उत्तरी बुन्देलखण्ड में सख्याऊ फाग से जोड़ दिया है और यह कह दिया है कि वर्तमान में राई तक आते–आते राई से दोहा विलुप्त हो गया।

इसका आधार चौकड़िया फाग होती है जो उत्तरी बुन्देलखण्ड तक ही सीमित है। यह कहना कि राई का यही विधान बुन्देलखण्ड में सर्वत्र पाया जाता है, उचित नहीं है। राई लोकनृत्य पूर्णतः पौराणिक पृष्ठभूमि से आया है, जिसमें कम से कम चार

चरण होते हैं। ये चारों चरण एक विधान के अंतर्गत माने गये हैं। प्रारंभ में सुमरनी जिसमें गणेश, सरस्वती, देवी, शिव आदि को मानकर अन्य देवताओं को स्मरण किया जाता है। तत्पश्चात् एक ख्याल गाया जाता है। वह स्वांग से अलग होता है। ख्याल के आधार पर सौबत को आभास मिल जाता है कि गीत की कथा क्या होगी और नर्तक नर्तकी को किस प्रकार नृत्य करना होगा। इसके उपरांत लम्बी डोरी का स्वांग गाया जाता है। जो नृत्य को विकास देता है और अंत में फाग आती है। यह प्रक्रिया हर नई फाग के साथ अपनाई जाती है। ध्यान देने की बात है कि यह नृत्य विलम्बित शुरू होता है, दोहा, ख्याल और स्वांग तक कहरवां का प्रयोग होता है इसके बाद फाग के बाद द्रुत संगीत दिया जाता है। राई गीतों में श्रृंगार तत्व प्रमुख होता है। परन्तु दूसरे प्रहर तक पहुंचते–पहुंचते इसका रस बदल जाता है। श्रृंगार के साथ हास्य, करुणा आदि के गीत आ जाते हैं, तीसरे और चौथे प्रहर में भक्ति योग आ जाता है जो ब्रह्ममुहूर्त तक भैरवी तक पहुंच जाती है। वर्तमान में बुन्देलखण्ड में जिस राई को प्रस्तुत किया जाता है, वह केवल श्रृंगारपरक एवं भक्तिपरक है। वास्तव में मूलरूप को लोक ने इसलिए भुला दिया कि राई को दरबारी संस्कृति के कारण विशेष महत्व नहीं दिया गया, जबकि मूल राई की अवधारणा अत्यन्त विशद् है। लोक साहित्य पर लिखते समय डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त के छतरपुर और पन्ना आदि के सर्वेक्षण का परिणाम माना जाता है, परन्तु गीत की अवधारणा एक पंक्ति से नहीं होती, गीत का मुखड़ा एक पंक्ति का हो सकता है इसलिए गायक रचनाकार नर्तकियां यदि इस एक पंक्ति के राई गीत को गाती हैं तो इसमें असंगति लगती है। क्योंकि गीत छोटा या बड़ा, उसका कलेवर ही इसके संदेश अथवा भाव को प्रकट करता है। वास्तव में यह प्रारंभिक पंक्ति स्थाई होती है। राई के मूल में यह एक पंक्ति होती है, इसी के आगे ख्याल जुड़ता है या स्वांग आता है कभी–कभी टोरा भी पंक्ति के स्थान पर दोहा भी प्रयुक्त किया जाता है। यदि टोरा के उपरांत ख्याल आता है तो वह एक से अधिक पंक्तियों का होता है और अपना संदेश पूर्ण करने पर समाप्त होता है। यदि स्वांग आता है तो इसके गीत तत्व तमें संदेश होता है परन्तु अत्यन्त संक्षिप्त, स्वांग गीत के साथ–साथ अपने संदेश को संप्रेषित करने के लिए अभिनीत भी किया जाता है। इसलिए भी स्वांग का प्रयोग आरंभ में न करके ख्याल का प्रयोग किया जाता है। ख्याल अपने पंक्तियों का हो सकता है। वह आगे आने वाली फाग से जुड़ता है और नृत्य को विलंबित से

द्रुतगति में ले जाता है। इसलिए उत्तरी बुन्देलखण्ड में प्रचलित एक पंक्ति के राई गीत को स्वीकार करना संभव नहीं है। वस्तुतः राई के गीत में तीन कड़ियां होती हैं, जिनके आधार पर नृत्य विलंबित से विकास पाकर द्रुतगति की ओर प्रस्तुत होता है।

राई की गायिकी अत्यन्त सीधी सादी, इसकी लय भी एक निश्चित विशिष्टता लिये हुए होती है। इससे हटने पर राई का मजा नहीं रह जाता। गायक, मृदंग, ढोलक, नगड़िया, टिमकी, झांझ, मंजीरा, झींका, किंगरी आदि लोक वाद्यों की संगत में सुमरनी के बाद कहरवा या दादरा ताल में मध्य लय से गाते हैं, इसी की आवृत्ति दुगुन और चौगुन में द्रुतलय में होती है। चूंकि एक ही धुन ही देर तक आवृत्ति होती है, उसमें मृदंगिया, टिमकी वाला और नर्तकियां अपने विभिन्न प्रकार के भावों के भावों और चरणों को विन्यास देती हैं। भाव या गीत के अनुसार अनेक शारीरिक कौशल प्रस्तुत करती हैं, इसमें पिरामिड से लेकर अनेक प्रकार के शारीरिक संतुलन वाली क्रिया कौशल दिखाये जाते हैं, यहीं से राई तीसरे चरण में पहुंचती है, जो मुख्य पंक्तियों की आवृत्ति करते—करते द्रुत हो जाती है। इस समय नृत्य में कारवां का रूप बदलकर उन्नमत्ता वाला स्वच्छंद संगीत उभर आता है। राई का चरम उन्मेश एक संगीतमय उन्मुक्तता और अठखेलियों का होता है। एक निश्चित अवधि में मृदंगिया और टिमकी वादक तीन संकेत के बाद गीत और नृत्य दोनों को एक साथ अचानक समाप्त कर देते हैं। वास्तव में यह नृत्य अपनी पराकाष्ठा में संदेह निहित भाव का पूर्ण परिवेश के साथ वातावरण बना देता है। जिनका दर्शकों पर इतना प्रभाव पड़ता है कि पराकाष्ठा के अंतिम क्षणों में उनके हाथ और पैर नृत्य की गति से थिरकने लगते हैं। यही राई की विशेषता है जो जनसमूह को बांधे रखती है। दक्षिण बुन्देलखण्ड में मध्यलय के बाद जैसे ही गायिकी में आवृत्तियां बढ़ती हैं और नृत्य के चरणों में द्रुतगति प्रवेश करती है, रमतूला और अलगोजा और शंख जैसे वाद्यों को भी बजाया जाता है, जिसकी संगत ढपला जैसे वाद्य भी देने लगते हैं, यह समां कुछ और ही होता है, जनसमूह की किलकारियों में नर्तकी (बेड़नी) की किलकारी मिलने से एक अलग संगीतमय निष्कृति होती है, इस प्रकार राई नृत्य शास्त्रीय और अर्द्धशास्त्रीय लोकनृत्यों की तुलना में एक विशिष्ट शास्त्रीय लोकनृत्य का बन जाता है।

राई वस्तुतः श्रृंगारपरक लोकनृत्य माना जाता है, परन्तु उसकी प्रकृति रात बीतते–बीतते चौथे पहर तक भक्ति परक हो जाती है, यह भक्ति जहां नायक–नायिका के निमित्त होनी थी, वहां यह आत्मा और परमात्मा के प्रति द्विअर्थक बन जाती है।

राई का महत्व बुन्देलखण्ड में विशेष इसलिए है क्योंकि यह बुन्देलों के इतिहास के साथ विशिष्ट रूप से जुड़ गई है। अब प्रश्न उठता है कि बेड़िनी है क्या? केवल विट शब्द से बेड़िनी बना देने पर प्राचीन कालीन गिट का स्मरण हो आता है, (न नटः न बिटः न च गायनः) से बेड़िनी का संकेत तो मिलता है परन्तु यह बात स्पष्ट नहीं होती कि बेड़िनी वात्स्यायन के कामसूत्र की नटी (रंग=योषित) ही क्यों है, बेड़िनी शब्द बेड़िया जाति की देन है और यह जाति वैदिककाल से दूसरे नामों से अपना जीवन–यापन करती आ रही है।

वैदिक युग में भी कुछ ऐसी जातियां थीं जो वन में रहते हुए समाज से इसलिए विच्छिन्न थी क्योंकि एक तो वे वन में रहती थीं दूसरे उनकी वृत्तियों में सामाजिक जीवन का विश्लेषण नहीं था, अनेक बार ये आपराधिक जातियों के रूप में स्वीकार की गई हैं, जबकि शासन के लोग इनका उपयोग संदेश भेजने, दूसरे जनपद या राज्यों की जासूसी करने और त्वरित गति से एकल या सामूहिक आक्रमण करने में गुरिल्ला लोगों की भांति करते थे, इनके एक प्रकार से गुप्तचर विभाग में ही रखा जाता था इसलिए इनके नाम भी अलग–अलग किस्म के मीणा, कंजर, बंजारा, वांछड़ा, कबूतरी, किसविन, बेड़िया आदि। इन जातियों को मध्ययुग में थोड़ा प्रकाशन मिला है, जबकि आधा आल्हाखण्ड, परमाल रासो आदि में इसलिए उल्लेख नहीं मिलता क्योंकि ये वनस्फर जाति के लोगों के बीच में ही आल्हा–ऊदल का पालन–पोषण हुआ था, इससे आल्हा–ऊदल को भी वनस्फर कहकर ओछी जाति का माना गया था। छिताई चरित में (15वीं शताब्दी) मृदंग के साथ नृत्य की संगति मिलती है पर वह नर्तकी का ऐसा बोध नहीं करता है जैसा कि जायसी के पद्मावत में मिलता है जिनसे बुन्देलखण्ड के समाज का सही चित्रण हो सकता है, बेड़िया जाति अपराधी वृत्ति को छोड़कर अब कलात्मक नृत्य में समाविष्ट कर ली गई है। इसका एक ही सूत्र मुगलकाल से खोजा जा सकता है, मुगल सेनाओं निमित्त विभिन्न स्थानों पर मीना बाजार लगते थे उनमें मुजरा की व्यस्था होती थी। ये मुजरे हिन्दू और मुसलमान दोनों

जाति की वेश्याएं करती थीं, इनके स्कूल तय होते थे, जिनमें मुजरा तहजीब और भाषा का अदब सिखाया जाता था, इन वैश्याओं या तवायफों को राजकी संरक्षण तो मिला हुआ था, परन्तु वे सैनिकों के साथ नहीं रह सकती थी, इसलिए अनेक बार मीना बाजारों के लिए इन विच्छिन्न परम्परा की जातियों के कलाकार (विशेषकर युवतियां) आमंत्रित कर लिये जाते थे, ये बेड़नियां जो नृत्य करती थीं, वह राही नृत्य कहलाता था। एक अन्य सूत्र से यह ज्ञात होता है कि ब्रिटिशकाल में ठग और पिंडारी दूर–दूर तक विभिन्न काफिलों के साथ जाकर ठगी और लूटपाट का कार्य करते थे, इनके साथ ही स्त्रियां काम करती थीं जो काफिलों के विभिन्न पड़ावों पर मनोरंजनार्थ नृत्य करती थीं, यह नृत्य भी राही नृत्य कहलाता था। इस नृत्य में बेड़िनी ही नृत्य कर सकती थी क्योंकि उसमें अप्रतिम ऊर्जा, अंग संचालन का कौशल और क्षपणखी वृत्ति होने के कारण एक विलक्षण सुख मिलता था। दोनों सूत्रों के आधार पर बेड़िया जाति का कलात्मक होने का अभिप्राय तो सिद्ध होता है, साथ ही राई को राही करने का औचित्य भी प्रकट हो जाता है। बेड़िया जाति की नर्तकियां बुन्देलखण्ड की राई ही विशेष तौर पर जुड़ी है अन्यथा अन्य जातियों जैसे भीलों आदि के द्वारा प्रस्तुत किया गया गबरी नृत्य भी राई के समान माना जाता है।

राई में प्रयुक्त बेड़नियों को इसी समय के आसपास जमींदारों और सम्पन्न क्षत्रियों ने अपनी शानो–शौकत के लिए पहले रखैल बनाया फिर घनिष्ठता की चरम सीमा में पत्नी बनाने का हौसला किया, ये उनको अपनाने में सफल हो गये, पर वंश में प्रवेश नहीं दिला पाये इसलिए उन्हें इतनी संभव दूरी पर घर बनाकर रखा गया कि वे सहज भाव से उपलब्ध हो सकें। यहां से बेड़नियों का एक अलग जीवन शस्त्र बना। इसमें प्रत्येक ठाकुर की एक ऐसी पत्नी को ठाकुर की आय से एक निश्चित राशि, अन्न, वस्त्र आदि की व्यवस्था की जाती थी, उनके बच्चे भी होते थे, जो कलाकार के रूप में ही कार्य करते थे। ये नर्तकियां कहीं राई करने नहीं जाती थीं। विशिष्ट अवसरों पर अपने ही संरक्षकों का मनोरंजन व मनोविनोद करती थीं। सम्पन्न क्षत्रिय, ब्राह्मण और जमींदार वास्तव में अपनी सामंतीवृत्ति के पोषण के लिए ओरछा के महाराज इन्द्रजीत सिंह की प्रवीण राय का उदाहरण अपना रहे थे। जब तक मालगुजारी प्रथा रही, रजवाड़े रहे इनका निर्वाह होता गया। इन व्यक्तियों की शान में

जब कमी आई तो ये बेड़िनियों का परिवार इनको गले की हड्डी जैसा बन गया, यदि ये इनकी अपेक्षाओं की पूर्ति करते हैं तो उन्हें बहुत कुछ देना पड़ता है और यदि वे ऐसा नहीं कर पाते हैं तो उनकी शान ही नहीं घटती, उल्टे फजीहत भी होती है।

वैदिक काल में बसंतोत्सव में से जुड़ा यह नृत्य किसी जमाने में चौमासा को छोड़कर प्रमुख पर्वों पर किया जाता था। इसका उस समय फसल और फाग से विशेष संबंध था, अन्य त्यौहारों में इसका तब तक प्रयोग नहीं होता जब तक कि कोई अनुष्ठान या मान्यता न मान ली जाये। राई की मादकता और मधुर संगीत लहरी की अपनी पहचान है, लोकनृत्य होते हुए भी यह अर्द्धशास्त्रीय आधार रखता है। इसके पुराने संदर्भों में इतिहास काल में संस्कृत साहित्य में सीधा उल्लेख तो नहीं मिलता है, पर प्रकारांतर से सूचना अवश्य मिलती है। इतिहासकाल में लोकोत्सव के माध्यम से यह माना जा सकता है कि इस भू–भाग में भी सामूहिक नृत्य अवश्य हुए होंगे, क्योंकि 1000 ईसवी के पूर्व तक संस्कृत और अपभ्रंश की साहित्यिक परम्परायें रहीं, भाषा, काव्य इन्हीं के माध्यम से विकसित हुआ है। यह वाचिक परम्परा के लोक काव्य में विशद वर्णन के साथ नहीं आया है, क्योंकि भाषा काव्य का प्रथम चरण दोहा और चौपाइयों तक ही सीमित रहा है तथा युग की प्रवृत्तियों ने वीररस की प्रधानता के कारण इसे अवसर नहीं दिया।

मृदंगिया और बेड़नी की जोड़ी की तरह ही मृदंग और टिमकी में भी नर–मादा का सा संबंध होता है और इन वाद्य लय के साथ (मंजीरे की ध्वनि) – मंजीरे, बारातियों की तरह रस बरसाते चलते हैं।

vkn'k jkbl dk bfrgkl %&

विभिन्न राइयों के आधार पर राई–आदर्श राई का इतिहास ही सृष्टि कार्य का इतिहास है। सतयुग में शिव–लीलाओं का विशेष प्रचलन था। इनको भस्मासुर की कथा को सभी जानते हैं। राई का संदर्भ इससे है। राई राजा, प्रभु, मालिक और महाराज के रूप में तो जानी ही जाती है परन्तु राई अनाज का एक दाना भी होता है जिसकी लघुता को पहाड़ की विशालता से मापा जाता है। पहाड़ अचल, अहं और अडिग, विशाल, पराजेय और सर्वशक्तिमान का प्रतीक है। व्यक्ति में अहं का पहाड़, उससे गलत कार्य करवाता है। ऐसा तभी होता है जब वह गलत नीति अपना लेता है। उसे राई जैसा लघु–छोटा बनाने का कार्य महाशक्ति ही कर सकती है। ऐसा ही युग–युगों से होता आ रहा है।

इसका प्रमुख कारण यह है कि वैदिक साहित्य तक आते–आते लोक में विभिन्न स्थानों पर कुछ परम्परायें विकसित हो गई थीं, जिनका प्रदर्शन या तो कराया जाता था अथवा विभिनन अवसरों पर लोग स्वयं आयोजित करते थे। ये आयोजन थे नव संवत्सर, नव श्येष्ठी अथवा नवात्र प्राप्ति का अवसर। प्रारंभिक अवस्था में इन आयोजनों का संबंध हर्ष और उल्लास के कारण प्रारंभ हुआ, परवर्तीकाल में इसे उत्सव के रूप में स्वीकार किया गया और कालांतर में जैसे ही ग्राम, जनपद, राज्य आदि की स्थापना हुई, इसका रूप बदलता गया। प्रारम्भ में इन आयोजनों में उत्साह की अभिव्यक्ति में उन्माद और थिरकनमय अंग संचालन को महत्व दिया। संगीत में गायन वैदिक मंत्रों के साथ आया और नृत्य की पृष्ठभूमि में वाद्ययंत्र आविष्कृत किये गये।

सामान्यतया भारत में नृत्य और नाट्यकला एक–दूसरे की अनुपूरक ही रही है। उत्तर वैदिक काल में शासकों, सामंतों और स्थानीय प्रधानों के कला को संरक्षण दिया। उस सामय तक विवाह योग्य युवक–युवती ऐसे अवसरों पर अपने दूसरे साथी का चुनाव कर लेते थे। नृत्य में स्फूर्ति बनी रहे, इस निमित्त दोनों सोमरस का पान करते थे। स्त्रियां अपने पैरों को सजातीं और दोनों आयोजन के अनुकूल वस्त्र सज्जा करते थे। इस समय तक नाट्कों के अनेक प्रकार बन चुके थे। रज्जू नृत्य, सलिल नृत्य, अरुण नृत्य, पुष्प नृत्य और बसंत नृत्य। इन नृत्यों का संदर्भ विभिन्न ऋतिओं में देखा जा सकता है।

लोकनृत्यों में विभिन्न महापुरुषों और देवताओं के प्रशंसात्मक गीत गाये जाते हैं। ऋग्वेद में तो इन्हें विभिन्न वाद्यों के साथ नृत्य करते दिखाया गया है। वैदिक युग में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार नहीं, विभिन्न कलाओं और कर्मक्षेत्रों में जाने की स्वतंत्रता थी। इसलिए नृत्य और नाट्य दोनों में इनका योगदान स्वच्छंदता के साथ मिलता है। यह परम्परा रामायण काल में चलती रही। विभिन्न यज्ञों के बाद प्रतिभाशाली व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति, समुदाय आदि का क्यों न हो, इन कलाओं को सीखकर व व्यवहार में लाकर प्रस्तुत करता था। यह एक विचित्र संयोग है कि नृत्य कला, नाट्य कला से आगे निकल गई। नाटयकला में पूरी स्वतंत्रता के साथ सज्जा संवाद और मंच की विशेष व्यवस्था अनिवार्य हो गई थी। लोक में सुविधा की प्रवृत्ति विशेष होती है, चाहे वह बोलने की बात हो या करने की। लोक सहजता की ओर अग्रसर होता है। इसलिए जहां पहले नृत्य और नाट्य साथ–साथ होते थे, वहां केवल नृत्य आयोजित होने लगे। नाटक लोक का होते हुए भी विशिष्ट लोगों की श्रेणी का हो गया। रामायण काल में इसे शिक्षा अधिग्रहण करने के बाद दिया जाने लगा। नृत्य और नाटक दोनों प्रदर्शनकारी कलायें हैं, पर एक–दूसरे के अनुपूरक होते हुए भी एक साथ नहीं चल सके। इस समय तक राजाओं को राज सिंहासन पर बैठते समय ही एक प्रदर्शनकारी कलायें प्रस्तुत की गईं। राजाओं ने अपने अंतःपुर में सुन्दर युवतियों को नृत्य तथा अन्य कलाओं के लिए आश्रय देना प्रारम्भ कर दिया। राम जन्म के समय अनेक ग्रहों ने राजमार्ग पर आकर हर्ष और उल्लास में नृत्य का प्रदर्शन किया था। अयोध्या में सभी कलाओं के मर्मज्ञ रहते थे। बाद में युवराज या युवराज्ञी बनाने पर विभिन्न त्यौहारों या उत्सवों में इनको प्रस्तुत किया गया था। मनुष्य ही नहीं राक्षणगण भी अपने इष्ट को प्रसन्न करने में नृत्य का माध्यम अपनाते थे। भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए रावण ने भी नृत्य किया था।

महाभारतकाल में तो नृत्य और नाट्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कृष्ण की रासलीला एक नृत्य ही है। यह इतनी अधिक प्रसिद्ध हुई कि इसके साथ आध्यात्मिकता भी जोड़ दी गई। वैसे देखा जाये तो महाभारतकाल में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूरा नृत्य और संगीत के साथ दिखाई गई है। पांडव कथा में अर्जुन को अपने वनवास काल में नृत्य सीखते बताया गया है। अर्जुन राजा विराट के यहां उनकी

पुत्री को नृत्य और नाट्य दोनों सिखाते थे। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण हरिवंश पुराण में मिलते हैं। नृत्य के संदर्भ में चित्रलेखा, उर्वशी, हेमा, रंभा, मेनका, केशी, तिलोत्मा आदि के नाम लिये जाते हैं। यह बात अलग है कि पौराणिक इतिहास में सभी कलाओं का संदर्भ मिलता है।

भगवान महावीर और गौतम दोनों का जन्म 600 ईसा पूर्व माना जाता है। इसके शिष्य पूरे देश में अपने धर्म का प्रचार–प्रसार करने के लिए जाते थे। जैन धर्म में समाज के सभी वर्गों के लिए माने जाते हैं। उनमें कोई विभेद नहीं होता, इसलिए सामान्य लोक में कलाओं के सामान्य रूप भी मिलते हैं, परन्तु नारियों की भागीदारी केवल धार्मिक अवसरों पर ही मिलती है। ऐसा ही बौद्धों की परम्परा में मिलता है। जैन और बौद्ध दोनों ही सत्य और मोक्ष के लिए इन कलाओं को अपनाते हैं, क्योंकि इनसे जन समाज को जुटाने में सहायता मिलती थी।

बौद्ध ग्रंथों में ललित विस्तार की चर्चा विशेष की जाती है। जैन और बौद्ध काल में चित्रकला और मूर्तिकला के साथ–साथ नृत्यों का विकास हुआ। इनके धार्मिक मंदिरों तथा बिहारों में महात्मा बुद्ध और महावीर की अनेक मूर्तियां विभिन्न शताब्दियों में लगाई गई। उपासना करते समय विभिन्न धर्मों में बलि की प्रथा थी। जो इस काल में क्रमशः कम हुई। यद्यपि दो आराध्यों को धूमिल करने के लिए शंकराचार्य का योगदान विशेष माना जाता है। बौद्ध धर्म को शंकराचार्य के प्रयासों से बड़ा झटका लगा और वह सरकते–सरकते भारतवर्ष से बाहर हो गया। आश्चर्य की बात यह है कि नंदी को शिव का वाहन माना जाता है, वह बौद्धों के साथ ही जुड़ा हुआ था। इसका मुख्य उद्देश्य कृषि से जुड़े लोगों को आकृष्ट करने का था। इसको इतना महत्व मिल चुका था कि ब्राह्मणों ने नंदी की महिमा कम करने के लिए शिवलिंग की स्थापना शुरू कर दी। जहां–जहां मंदिर बनाये जाते थे, वहां–वहां नृत्यांगनाओं की कल्पना मूर्तियों में की जाती थी। क्रमशः मूर्तिकला में और विकास हुआ।

नृत्य का संबंध देवदासियों से विशेष है। ये समस्त मंदिर की जिम्मेदारी लेकर ईश्वर की पूजा करती थी और जनसमाज को प्रसाद बांटती थीं। देवदासी प्रथा के अनुरूप भावनाओं और विभिन्न भावों का प्रदर्शन अपने ईश्वर के प्रति करती थीं। शिव के साथ तांडव नृत्य और पार्वती के साथ लास्य नृत्य जुड़े हुए हैं। ताण्डव की कथा

इस प्रकार है – पुराणों में कहा गया है कि करीब 10000 ऋषि एक जंगल में रहते थे। उन्होंने बहुत काल तक तपस्या की। उनकी इस तपस्या से आध्यात्मिक शक्ति इतनी बढ़ गई कि वे स्वयं को सबसे श्रेष्ठ मानने लगे। भगवान शिव और विष्णु इनसे ईर्ष्या करने लगे। अतः उन्होंने इनका तप खण्डित करने के लिए कामदेव को भेजा। भगवान शिव ने एक साधु का रूप धारण किया और विष्णु एक सुन्दर स्त्री बन गये। दोनों पुरुष और स्त्री के रूप में ऋषियों के आसपास ही रहने लगे। दोनों की सुन्दरता और शक्ति की चर्चा ऋषियों के बीच होने लगी। उनका मन डॉवाडोल हो गया। जब ऋषियों को पता चला कि ये छद्म वेशधारी कोई और है तो उन्होंने इनको श्राप दिया। पर उनके श्राप का कोई प्रभाव नहीं हुआ। तब यज्ञ करके उन्होंने पूजा की और परमात्मा से वरदान प्राप्त किया। ऋषियों ने एक ओर यज्ञ किया, जिससे एक छोटा राक्षस पैरा किया। इसके द्वारा वे साधु और उसकी स्त्री को नष्ट कराना चाहते थे। भगवान शंकर ने अपना स्वरूप छोड़कर राक्षस के शरीर पर नृत्य किया, यह ही तांडव नृत्य कहलाया। यह नृत्य बहुत जनप्रिय हुआ, क्योंकि इसमें शक्ति, उपसर्ग, भय, घृणा, सहनशीलता, चेतावनी और क्रोध का प्रतिनिधित्व है। भगवान शिव इसके जनक हैं।

लास्य नृत्य की जनक पार्वती मानी जाती हैं। यह पार्वती की तपस्या के बाद शिव को आकर्षित करने के लिए किया गया था। पार्वती लगातार तपस्या कर रही थीं, परन्तु उनके सामने शिव प्रकट न होकर ब्राह्मण के रूप में सौम्यता के साथ पार्वती को तप छोड़ने की सलाह दी। पर पार्वती ने अपने व्रत को तब तक जारी रखा, जब तक शिव स्वयं अपने रूप में प्रकट नहीं हो गये। विवाह के बाद शिव को प्रसन्न करने के लिए पार्वती ने लास्य नृत्य किया था। शिव नटराज के रूप में मुख्य माने जाते हैं और पार्वती शक्ति के रूप में स्वीकार की जाती हैं। दोनों के बीच में मुख्य समस्या काम के शमन की है। जैसे ही काम शमित होता है, मोह, लोभ आदि शांत हो जाते हैं, इसलिए लास्य के अंत में यह बताया जाता है कि शिव और शक्ति एक शिशु पर नृत्य करते दिखाई देते हैं। ताण्डव और लास्य वास्तव में जगत के विकास का लक्षण भी प्रस्तुत करते हैं। लोक में इसे व्यापकता से स्वीकार किया गया, परन्तु शताब्दियों में इसका रूप लोक में बदलता गया। विभिन्न कथाओं के साथ मिलकर यह नृत्य भिन्न–भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया।

लगभग 2400 वर्ष पहले तक्षशिला में एक ब्राह्मण का जन्म हुआ था जिसे उसके माता–पिता ने चाणक्य नाम दिया था। यही चाणक्य, चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु थे और उन्होंने मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी। चाणक्य का दूसरा नाम कौटिल्य है। इन्होंने अर्थशास्त्र नामक एक पुस्तक लिखी थी, इसमें तत्कालीन राजनीति के साथ–साथ सामाजिक जीवन का भी वर्णन किया गया है। समाज के कलाकार वर्ग की चर्चा अनेक प्रकार से की गई है। इसमें गायक, नर्तक और वाद्य बजाने वाले उन लोगों की चर्चा है जो अपनी कला से ही आजीविका कमाते थे। राज्य में ऐसे कलाकारों को शाही खजाने से वृत्ति मिलती थी। कौटिल्य ने यद्यपि इन कलाकारों को कृषि से दूर रखने की सलाह दी थी, क्योंकि ये काम से ध्यान बंटा देते हैं और इसमें उपज की कमी हो जाती है।

भरत नाट्य शास्त्र के महान आचार्य माने जाते थे। इनके नाट्यशास्त्र में केवल अपने युग की ललित कलाओं, नाट्य, काव्य आदि का वर्णन इस रूप में किया गया है कि वह सार्वकालिक और सार्वजनिक हो गया है। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्मा ने देवताओं को प्रेरित और आल्हादित करने के लिए भरतमुनि से नाट्य शास्त्र लिखने को कहा था। भरत का उल्लेख कालिदास ओर भवभूति जैसे संस्कृत के कवियों ने अपने ग्रंथों में किया है। इनके सिवाय भरतमुनि की चर्चा अभिनव भारती (अभिनव गुप्त), अभिनव दर्पण (नंदीकेश्वर), दशरूपक (धनंजय) ने भी की है। भरत मुनि का नाट्य शस्त्र निर्विवाद रूप में साहित्य और कलाओं के संदर्भ में आदि ग्रंथ है। इसको अनेक लोगों ने अपने–अपने तरीके से भाष्य करके प्रस्तुत किया है। नाट्यशास्त्र पर अनेक पुस्तकें लिखीं गई, जिनका आज भी संदर्भ दिया जाता है।

मध्ययुग के पूर्व ही तुर्कों और मुगलों ने उत्तर भारत में आना शुरू कर दिया था, प्रारम्भ में ये विदेशी विभिन्न मंदिरों और राज्यों को लूटने की दृष्टि से ही आते थे। बाद में यहां के शासक बन बैठे। मंदिरों में पाई जाने वाली दासियां, देवदासियां सभी को उन्होंने अपना गुलाम बना दिया। देवदासी जो नृत्य करती थी, उसे वे मुजरा कहा करते थे। इस समय तक विभिन्न कलाओं की स्थिति बहुत ही दयनीय थी, यह दशा शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक बनी रही, इसके बाद मुगलकाल में युवतियों को ललित कलाओं की शिक्षा दी गई। मुसलमान लड़कियों को नृत्य कराते। इस समय

तक मंच पर केवल मध्य भाग ही सजाया जाता था। सारंगी, मृदंग, तबला आदि बजाने वाले अपनी कमर में बांधते थे। मशालों के बीच में ये नृत्य सैनिकों के लिए किये जाते थे। इस काल में संगीतकारों, नर्तकों और नर्तकियों के निमित्त अनेक शर्तें लगा दी गई जो आज तक उसी रूप में अपनाई जाती हैं। नर्तकियां दो प्रकार से नृतय करती थीं, तबले के बोलों और परनों के आधार पर। गीत उच्चारित किया जाता था, दूसरा प्रकार विभिन्न भावनाओं और चेहरों पर दिये जाने वाले भावों के साथ नर्तकी स्वयं गाना गाती थी। यह ठुमरी या गज़ल कहलाता था। हिन्दू समाज में राधा–कृष्ण को आलंवन बनाकर संगीतकार नृत्य परक रासलीला कराते थे। जितने भी शास्त्रीय गीत हैं वे भातखंडे ने अपनी पुस्तक में प्रस्तुत किये हैं। पुस्तक का नाम कानून राग था। जो 1874 में प्रकाशित हुई थी। नृत्य में वेशभूषा पर विशेष ध्यान दिया जाता था, इसके बाद आभूषणों का नंबर आता था। ध्यान देने की बात है कि कुलीन घरानों की लड़कियां और राजकुमारियां एक विशेष वेशभूषा धारण करतीं थीं, इसे पोशाक का नाम दिया जाता था। इसी से संगीतकारों के घराने की संज्ञा बनी।

औरंगजेब के बाद जब मुहम्मद शाह रंगीला दिल्ली के सिंहासन पर बैठा तो उसने पुनः नृत्य और संगीत को बढ़ावा दिया। उसने नृत्य और संगीत की नई–नई ईजाद कीं। ठुमरी, टप्पा, ख्याल, गज़ल आदि का सूत्रपात किया। नृत्य में नये भाव, चरण और अंग संचालन जोड़े और उसे बहुत ही आकर्षक बनाया। कहा जाता है कि वाजिद अली शाह अवध का अंतिम राजा था। वह अपनी भौतिकवादी समृद्धि के लिये ही जाना जाता था। संगीत और नृत्य पर उसका विशेष चाव था। इन दोनों कलाओं को उसने विशेष रूप से प्रोत्साहित किया और व्यावहारिक तौर पर पुनर्जीवन दिया। इस समय के प्रसिद्ध लेखक मोहम्मद करम इमाम के अनुसार वाजिद अली शाह ने संगीत और नृत्य के सभी पक्षों पर महारत हासिल कर ली थी। उसके दरबार में अनेक कलाकारों को आजीविका मिली। वह स्वयं रासलीला में भाग लेता था। कृष्ण की भूमिका करते हुए गोपियों के साथ नृत्य करता था। इस समय ठुमरी और गज़ल गायकी शीर्ष पर रही।

मुगलकाल में संगीत और नृत्य को पूरे देश में समर्थन मिला। प्रसिद्ध सूफी संत ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया, ख्वाजा मुयीनद्दीन चिस्ती, अजमेर, बाबा फरीद पाक

पट्टन और शाहिद चान चराग, पावपनपिंग (पाकिस्तान) इस आंदोलन के कर्णधार हैं। इनकी जन्म की प्रशस्तियों में पूरे देश में कार्यक्रम किये जाते थे। इसमे देश और विदेश के भक्त शामिल होते थे। मशहूर गायक और नर्तकियां इन कार्यक्रमों को चार चॉद लगा देते थे। नृत्य के साथ मुजरा भी होते थे, भक्ति परक कब्बालियां भी होती थीं।

मुगल बादशाहों ने पहले कत्थक जैसे नृत्य को संरक्षण दिया था, परन्तु अंग्रेजों के आते ही इसे बहुत बड़ा झटका लगा, क्योंकि उन्होंने अपनी व्यवस्थायें स्वयं कीं और उसमें शासकीय आदेशों के तहत् नवाबों, राजाओं और जमींदारों आदि को शामिल होना पड़ता था। ब्रिटिशकाल में भारतीय नृत्य और संगीत को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। कलाकार केवल तीर्थ स्थानों या मंदिरों में अपनी प्रस्तुतियां करते थे। इसी प्रकार मुसलमानों के बीच सूफी मजारों पर विशेषकर अजमेर शरीफ और पटना शरीफ में मजलिस लगाया करते थे, परन्तु इनके प्रदर्शन एक सीमित समाज तक ही रह गये।

आधुनिक काल में स्वतंत्रता के बाद भारत में अनेक अकादमियां बनाई गई। राज्यों में इनके केन्द्र स्थापित किये गये और सरकार की ओर से उन्हें संरक्षण मिला। नेशनल एकेडमी ऑफ डांस, म्यूजिक एण्ड ड्रामा, न्यू देहली ने पांच शास्त्रीय नृत्यों को मान्यता दी। (1) कत्थक, (2) कत्थककली, (3) भरत नाट्यम, (4) ओडिसी, (5) मणिपुरी। इनके महान आचार्य अब इन नृत्यों में संभवतः सुधार कर रहे हैं। शास्त्रीय नृत्यों के समानान्तर लोकनृत्यों की परम्परायें आदिकाल से चलती रही हैं। ये नृत्य पूर्णतः शास्त्रीय नहीं होते। इनमें प्रदेश विशेष के अनुरूप एक नैसर्गिक विशेषता होती है। जो दूसरे प्रदेशों से भिन्न है। लोकनृत्य को देखकर ही अपने आप कह उठते हैं कि यह अमुक प्रदेश का है।

नृत्य क्या है? संक्षेप में यह कहा जाता है कि नृत्य सुख और आनंद की अभिव्यक्ति है। जब एक व्यक्ति, प्राणी, पशु या पक्षी अत्यधिक सुख का अनुभव करता है और उससे शक्तिवान और उत्साही हो जाता है, तो उसका शरीर रोकने पर भी आनंद की प्रतीति हाथों, पैरों और चेहरे के भाव से कूदकर, उछाल भरके, डोलायमान होकर अथवा अन्य तरीकों से व्यक्त कर देता है। नृत्य तीन प्रकार के होते हैं – एक, दो व्यक्तियों का नृत्य, तीसरा सामूहिक नृत्य। जैसा कि इनका नाम है इसमें उतने ही

व्यक्ति जुड़ जाते हैं। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक जीवन का एक दर्शन होता है। मनुष्य की भावनायें विचार आदि का प्रदर्शन कुछ विशेष अवसरों पर अपने आप अथवा सायाश प्रस्तुत हो जाता है। विभिन्न आश्रयों में रहता हुआ व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। यहीं पर उसका सामाजिक जीवन, सांस्कृतिक जीवन से संस्पर्श पाता है और इसका मूर्तिमान रूप किसी बच्चे के जन्म, विवाह, विजय, धार्मिक, उत्सवों, त्यौहारों, मेलों अथवा अच्छे कार्यों में प्रसंशा देने में मिलता है। ऐसा माना गया है कि समस्त प्राणियों में काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार पाया जाता है। मनुष्य स्वतंत्रता के साथ स्वयं को अभिव्यक्त करते, जबकि प्राणियों में यह नैसर्गिक है। मनुष्य चूंकि बुद्धिशील प्राणी है वह इन दोनों को शीघ्र ही नियंत्रित कर लेता है, उसका ज्ञान दूसरों एवं स्वयं को प्रेरणा ही नहीं देता, आगे भी बढ़ाता है।

इसी का एक साक्ष्य प्रमाण है श्री रामसहाय पाण्डेय जी जो कि इस कला के वर्तमान में राई के भीष्म माने जाते है, श्री पाण्डेय इस कला के बचपन से ही ऐसे वशीभूत हुए की आपने अपने आप को कला के प्रति समर्पित कर दिया, उन्होंने न समाज की न परिवार की परवाह किये बिना ही इस लोक कला के रंग में रंग गये, श्री पाण्डेय ने इस लोक कला को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर स्थापित किया। श्री पाण्डेय ने सन् 1950 में अपने दल का गठन और ग्रामीण अंचलों में अपनी प्रस्तुतियॉ देने प्रारंभ किया और इसी के चलते इस नृत्य को करने के जुर्म में कई बार जेल भी जाना पड़ा क्योकि अंग्रेजी शासन के दौरान लोक नृत्य राई पर रोक लगा दी गई थी कि बिना सरकार स्वीकृति के बिना यदि कोई यह नृत्य करता है या करता है तो वह कानूनन जुर्म होगा। (इसका वर्णन हम पूर्व में भी कर चुके है जो भारत के इतिहास के वर्णन में मिलता है) क्योकि आज़ादी के पहले से अनेको राई के किस्से जिनसे क्रांति की लपटे फैली थी जिस कारण से लोक नृत्य राई उस समय से रोक लगा दी गई थी जिसके चलते इन्हें राई करने के जुर्म में जेल जाना पड़ा था। उसके बावजूद भी श्री पांडे जी ने राई करना नही छोड़ा।

अनेको विपरीत परिस्थियों के बाद भी आपने राई करना नही छोड़ा उसके बाद सन् 1960 में आकाशवाणी भोपाल से जुड़े और आकाशवाणी के द्वारा आयोजित

कार्यक्रम रंगफुहार सन् 1964 में आयोजित किया गया, और इसकी प्रस्तुति रविन्द्र भवन भोपाल में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री गोविंद नारायण जी की उपस्थिति में प्रस्तुत की गई। उसके बाद लगातार सरकारी प्रस्तुतियॉ करते चले गये और अनेको राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रस्तुतियॉ दी है, इस लोक कला को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने का श्रेय भी इन्हीं को जाता है, इसी के चलते श्री पांडे जी को मध्यप्रदेश शासन द्वारा 1980 में नृत्य शिरोमणि की उपाधि से व 1984 में शिखर सम्मान व 2015 में राष्ट्रीय तुलसी सम्मान से सम्मानित किया गया व संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली द्वारा राष्ट्रीय टैगोर सम्मान से विभूषित किया गया।

आज वो 84 वर्ष की आयु में भी लोक नृत्य राई की प्रस्तुतियॉ दे रहे है, आज वो देश के एक शीर्ष कलाकार के रूप में स्थापित हो चुके है, उन्हीं के मार्गदर्शन में मैने एक संगोष्ठी का आयोजन किया जिसमें बहुत से विद्वानों को आमन्त्रित किया गया, उनके व्याख्यान से लोक नृत्य राई की उत्पत्ति व विकास की अनेकों जानकारियॉ मालूम हुई जिसको चलचित्र के माध्यम से आपकी ओर प्रस्तुत कर रहे है।

इसी प्रकार सन् 1954 में भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के सागर आगमन पर प्रकाशित जवाहर अभिनंदन ग्रंथ में राई से संबंधित एक मंदृग वादक का उल्लेख मिलता है नंन्ही देवरी के सागर के श्री रघुवीर चौधरी को ब्रिटिश काल में किसी अपराध के लिए फॉसी की सजा सुनाई गई थी फांसी देने के पहले जब उसकी अंतिम इच्छा पूछी गई तब उसने बेड़नी के साथ मृंदग बजाकर राई करने की इच्छा प्रकृट की थी जिसे स्वीकार कर लिया गया था, तो जेल में ही बेड़नी बुलाकर राई कराई गई जब रघवीर चौधरी ने अपना मृदंग कमर में बाधकर बेड़िनीयों के साथ लोक नृत्य राई किया और जी भर के नाचे।

कहते है वहां के जेलर की पत्नि को यह नृत्य इतना भाया की मंदृग बजाने की कला से बहुत प्रभावित हुई उससे प्रसंन्न होकर रघुवीर चौधरी को लगने वाली फॉसी की सजा माफ करने के लिए जी तोड़कर मेहनत की अंत में रघुवीर चौधरी की फॉसी को माफ कर दिया गया था, व उसे जेल से मुक्त कर दिया गया था। बुजुर्गो के कथानुसार ब्रिटिश में ही खुरई तहसील में एक जुदईया नाम की बहुत सुंदर बेडनी रहती थी, उसने बेड़िया से शादी कर ली थी बेड़िया की ही आज्ञा से नृत्य करने को जाती थी, नहीं तो घर पर रहकर अपनी घर गृहस्थी का काम देखा करती थी, कार्यवश एक समय बेड़िया किसी कार्य से शाहगढ़ गया हुआ था फागुनी बसंती मौसम था, पास में ही चौकी थी जहॉ पर 10–15 सिपाही तैनात थे उन्होंने जुदईया को अकेली देख उससे नाचने का प्रस्ताव उसके सामने रखा मगर उसने उनका आग्रह स्वीकार से साफ इंकार कर दिया तब अंग्रेज सिपाही जुदंईया को जबरन उठा ले गये, और रात भर शराब के नशे में उसे नचाते रहे, और असहाय स्त्री के साथ जघन्य कृत्य भी किया जब सुबह होने पर बेड़ियॉ घर लौटा तो उसके आने पर जुदईया ने पूरा किस्सा सुना डाला तो जिसे सुनकर बेडियॉ आग बबूला हो उठा उसने उसी वक्त जुदईया को बुलाया और थाने में पहुचा, सिपाही शराब के नशे में गहरी नींद में सो रहे थे, बेड़िया ने अपनी तबल से सभी के सिर कलम कर दिये दूसरे ही दिन पुलिस ने

उसे पकड़कर सागर कोर्ट में पेश किया जहॉ से उसे जेल मे भेज दिया गया। और बाद मे उसे फॉसी की सजा दे दी गई लोग कहते है कि बेड़िया की जेल के बाहर समाधि बना दी गई थी तो जुदईया जीवन भर रोती रही जब तक ज़िंदा रही वह हर साल दीवाली पर सागर जेल के सामने आती और अपने पति बेड़िया की स्मृति में मधुकरशाह बुंदेला की बनी समाधि के निकट अपनी पति बेड़िया की समाधि पर दीपक जलाकर घर लौट जाती थी। इस तरह के लोक नृत्य राई से जुडे हुए अनेको किस्से सुनने को मिलते है, जिनका हमारे देश की आज़ादी एवं इतिहास व लोक कला से जुड़े हुये होते है।

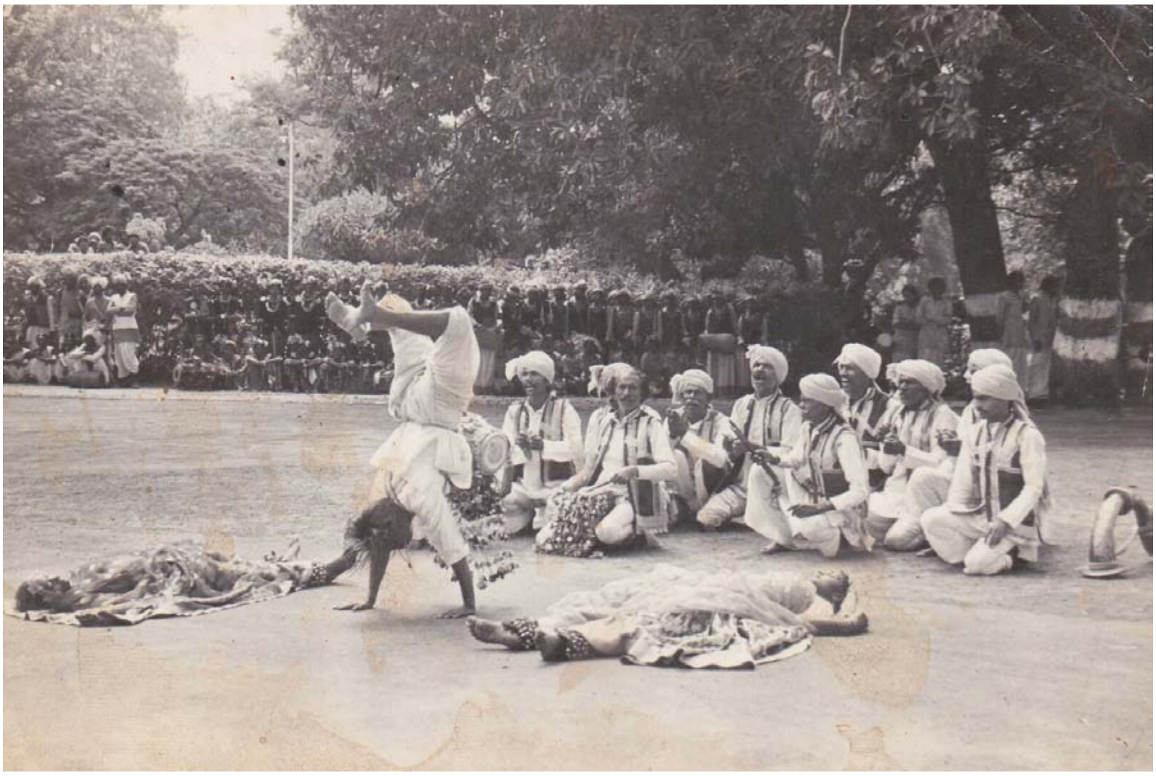

lksus&pkanh ds {ks=h; vkHkw"k.k %&

राई में शारीरिक प्रदर्शन इतना महत्व नृत्यकला का होता है। पारिवारिक वातावरण और अनुभव ही इनका गुरु होता है, लेकिन अब इस कला में भी आधुनिक युग के चिन्ह परिलक्षित होने लगे हैं

बेड़नी सोने–चांदी के क्षेत्रीय आभूषणों से सजकर जब दर्शकों के सामने आती है तो मेनका और रम्भा की कल्पना साकार हो जाती है। केशों में गुंथे स्वर्ण फूल, माथे पर केंच का बड़ा–सा बूंदा और झूलती हुई सोने की बेंदी, आंखों में काजल की पतली

कोर, नाक में बड़ी–सी गोल नथ, मुंह में पान का बीड़ा, कानों में कर्ण फूल, सांकर, गले में तिदाना, हमेल, हार, लड़ियां, बोहों में बोटा, बांकें, कलाई में गजरा, कंकना, चूड़ा, पटेला और चूड़ियां, अंगुलियों में सोने–चांदी की मुंदरियां और छल्ले, कमर में करधनी, पांवों में घुंघरू की चौरासी और पावों की उंगलियों में बजने वाली बिछियां, चूड़ीदार पायजामें के ऊपर लगभग बत्तीस हाथ का साटन या सिल्क का लहंगा, मखमल या रेशम की चोली और रेशमी फूलों की रंगीन ओढ़नी, आजकल चेहरे पर और होंठों पर लिपिस्टिक का चलन भी चल गया है।

बुन्देलखण्ड की जनरंजनी लोककथा राई में सभी वर्गों, समुदायों की अपनी कला किरण से आकर्षित किया है। बुन्देलखण्ड के इस खुले वातावरण से ज्येष्ठ की धूप और सावन के मेघ झांकते हें। रसरंगी जीवन को सप्त स्वरी सरगम निससृत होता रहता है। नृत्य, संगीत, अभिनय और शौर्य प्रदर्शन के नक्षत्रों से जन मनोरंजन करती हुई राई लगभग धुरी है। कथकली, ओडिसी और मणिपुरी नृत्य किसी समय लोक मनोरंजन की मुक्त धारा प्रवाहित करते थे। कालांतर में शासनोक्ति रीति–नीति ने इसका सुगठित एवं सुस्पष्ट रूप संवार दिया है। बुन्देलखण्ड की राई भी लोक कलाकारों, कलाशोधकों, विशेषज्ञों और विवेचकों की बाट जोहे प्रतीक्षारत हैं – विस्तुत एवं ऊंची आवाज में उड़ान भरने के लिए।

मृदंगवाचक सधे हाथों से मृदंग पर थाप देकर कभी सावन–भादों का गहन गंभीर मेघनाद करता है तो कभी सुनार की तरह सुधर कोमल आघात कर चुटकियां लेता। कजियां खिलाता चलता है और (टिमकी की ध्वनि) और टिमकी जैसे – दूर किसी गहरे तालाब में गोता लगा गई और कभी, वैसे ध्वनि की उभेद्य दीवार खड़ी कर दी हो।

(धीमे–धीमे टिमकी की ध्वनि उभरकर समाप्त हो जाती है)

राई में रंग–गुलाल के लोकगीत बसंत पंचमी से रंग पंचमी तक गाये जाते हैं। (होली गीत समाप्त) यदि गांव में मिलने–जुलने वालों के परिवार में किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती है तो होली के अवसर पर दुःखी परिवार को सांत्वना देने के लिए पूरी की पूरी राई मंडली अनरये की फागें गाती हुई उसके घर जाती है। इन फागों में आत्मा परमात्मा का मिलन, आत्मा अमर है, शरीर नश्वर है आदि भावों को प्रस्तुत किया जाता है।